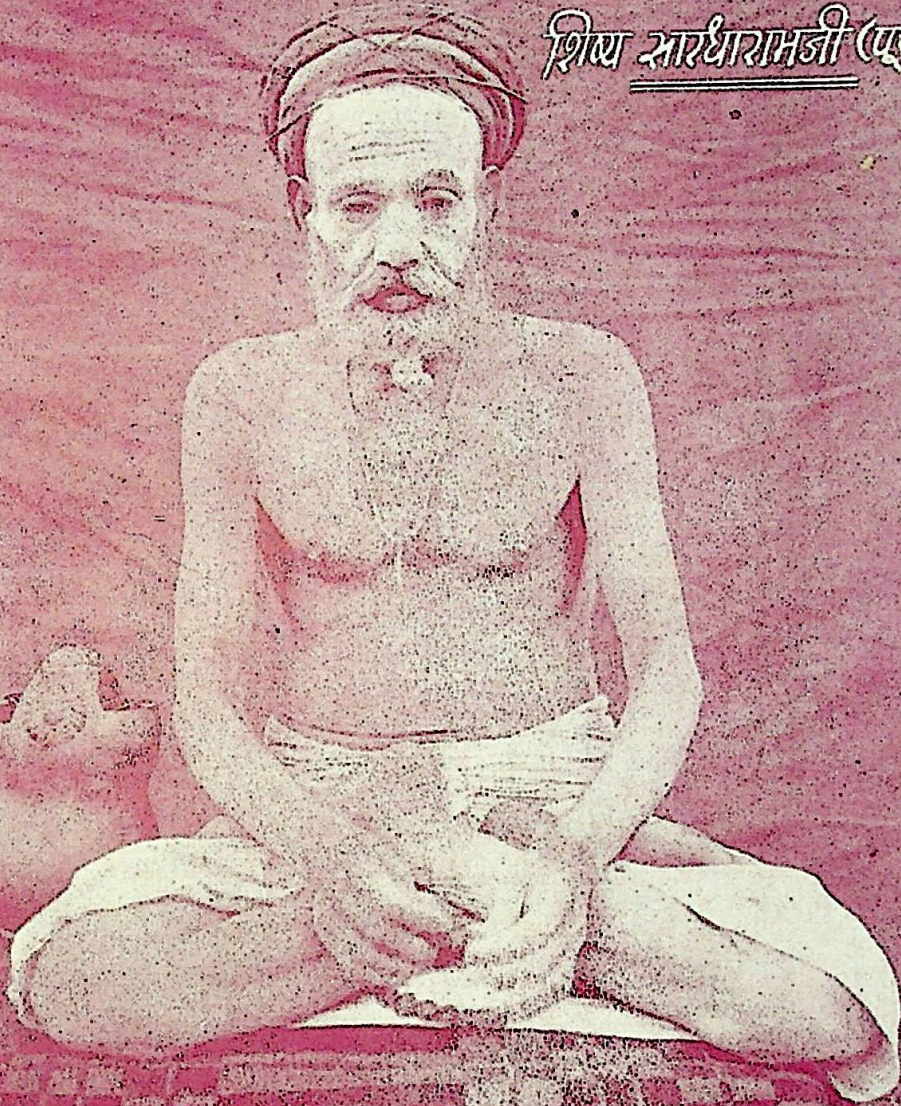


श्रीमान् महन्त बाबा मीजीरामजी (उद्यासीन.)

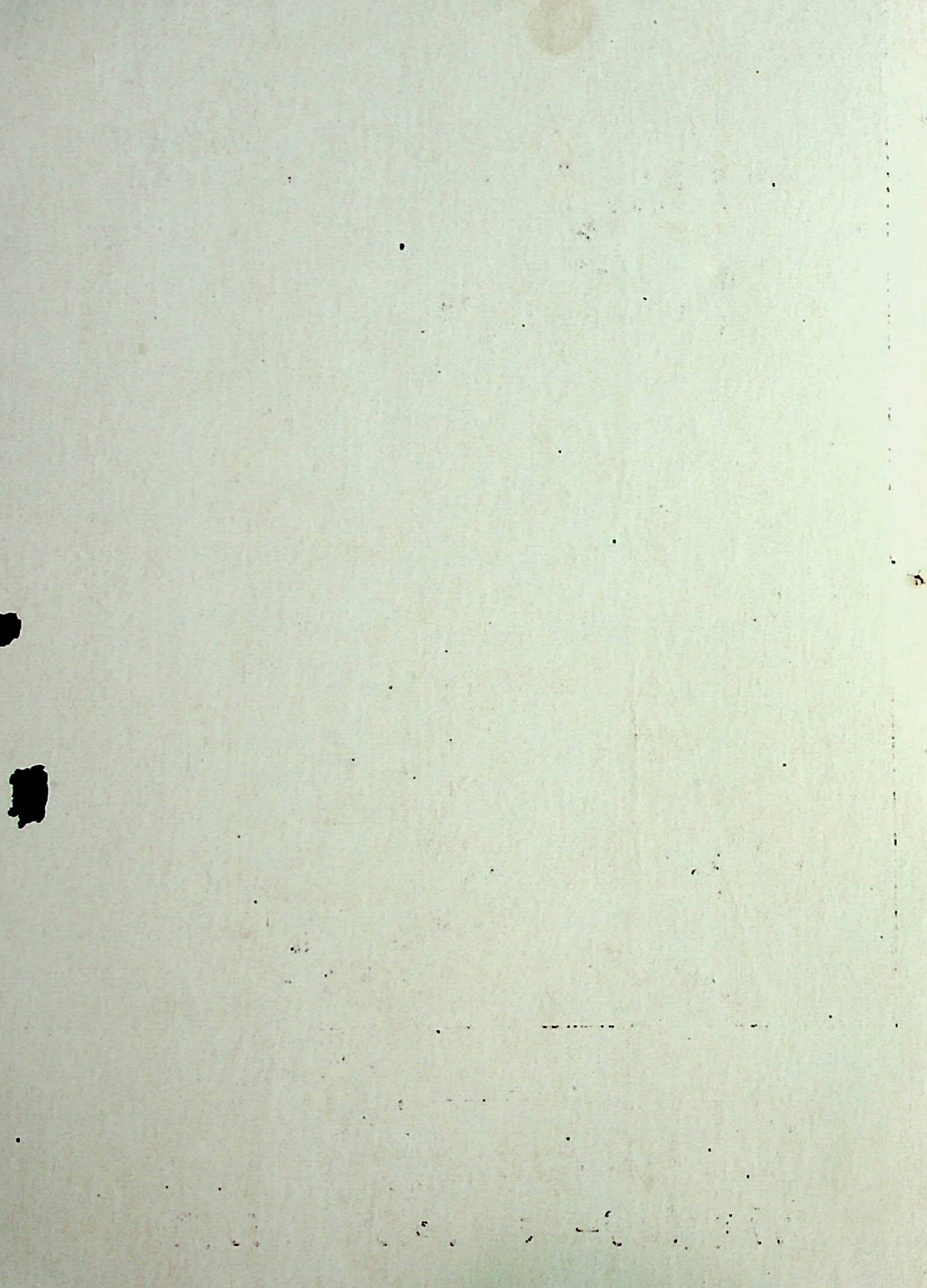
उज्जयिनी इत्यादि.

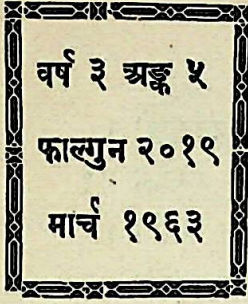
शिष्य सार्धारामजी (पूजा.)



परमानन्द संदेश

वर्ष ३ अंक ५-फाल्गुन १०१९ मार्च १९६३





परमानन्द संदेश

सचित्र आध्यामिक, धार्मिक मासिक

संस्थापक

श्री १०८ सद्गुरु बाबा शारदाराम मुनिजी महाराज, श्रीतीर्थ रामटेकड़ी, पूना

सम्मान्य संरक्षक

महा मण्डलेश्वर श्री स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज

संचालक

श्री अजित मेहता [बी० ई० सिविल]

सम्पादक—

आचार्य भद्रसेन

साधारण सदस्यों के लिये शुल्क

५) पांच रुपए वार्षिक

स्थायी सदस्यों के लिए

२५) पच्चीस रुपए ६ वर्षों तक

आजीवन सदस्यों के लिए

१५१) एक सौ इक्यावन रुपये

—*—

साधारण अंकोंका मूल्य—५० नये पैसे

पत्र-व्यवहार का पता :—

शारदा प्रतिष्ठान

सी० के० १५।५१ सुडिया, बुलानाला

वाराणसी—१

विषय सूची—

विषय	पृष्ठ संख्या
१—श्री सद्गुरुदेव की आरती	२
२—कीर्तन धुन	२
३—बन्धन यही कहलाय है	३
४—निर्गुण महारामायण	५
५—बाबाजी का प्रवचन	९
६—भगवान की अद्भुत लीला	१२
७—ॐकार की चार मात्रा और आत्माके चार पाद	१३
८—मानस सरस्वती	१७
९—अटपट बानी (कविता)	२०
१०—देश पर सन्तों का उपकार	२१
११—भगवान का आश्रय	२३
१२—जागो-जागो शिव भगवान(कविता)	२५
१३—परमात्म ज्ञानका महत्व	२६
१४—कृपण मत बनो	३२
१५—मोह फाँस	३३
१६—राम नाम का बैरी	३५
१७—आत्म ज्ञानका अग्रदूत	३९

श्री सद्गुरुदेवजी की आरती

ॐ जय गुरुदेव दयानिधि, दीनन हितकारी, प्रभु दीनन हितकारी ।
जय जय मोह विनाशक (२) भव बंधन हारो ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥१॥
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव, गुरु मूरति धारी, प्रभु गुरु मूरति धारी ।
वेद पुराण बखानत (२) गुरु महिमा भारी; ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥२॥
जप तप तीरथ संयम, दान बहुत दीने, प्रभु दान बहुत दीने ।
गुरुबिन ज्ञान न होवे (२) कोटि जतन कीन्हें, ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥३॥
माया मोह नदी जल, जीव बहे सारे, प्रभु जीव बहे सारे ।
नाम जहाज बैठाकर (२) गुरु पल में तारे, ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥४॥
काम क्रोध मद मत्सर, चोर बड़े भारे, प्रभु चोर बड़े भारे ।
ज्ञान खड़ग दे कर में (२) गुरु सब संहारे, ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥५॥
नाना पंथ जगत में निज-निज गुण गावे, प्रभु निज निज गुण गावे ।
सबका सार बताकर (२) गुरु मारग लावे, ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥६॥
गुरु चरणामृत निर्मल, सब पातक हारो, प्रभु सब पातक हारो ।
वचन सुनत तम नासे (२) सब संशय हारो, ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥७॥
तन मन धन सब अरपन, गुरुचरण कीजै, प्रभु गुरुचरण कीजै ।
परमानन्द परमपद (२) मोक्ष गति लीजै, ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥८॥

कीर्तन धुन

राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम् ।

जानकी वर मधुर मूरति, राम राघव रक्ष माम् ॥

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम् ।

राधिका वर मधुर मूरति, कृष्ण केशव रक्ष माम् ॥

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि माम् ।

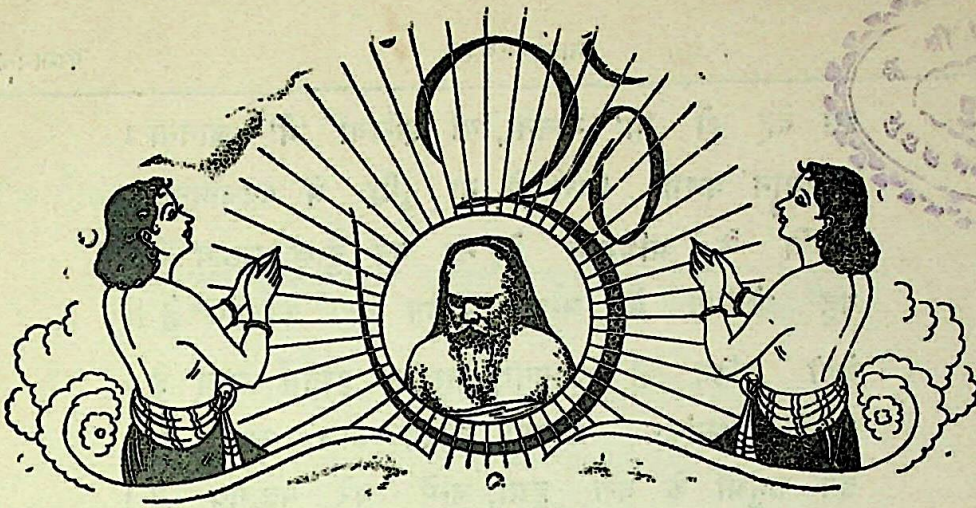
पार्वती वर मधुर मूरति, चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥

साम्ब सदा शिव, साम्ब सदा शिव, साम्ब सदा शिव जय शंकर !

हर हर शंकर, दुःखहर शंकर, सुखकर भयहर हर शंकर !!

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।



ॐ जय सद्गुरु शारदाराम

परमानन्द संदेश

दुख खराडन परमानन्द मराडन, है इस पत्र का भाव ।

पढ़े सुने अमली बने, सो लख पावे प्रभाव ॥

वर्ष ३
अङ्क ५

वाराणसी मार्च संवत् २०१६ फाल्गुन १९६३ ई०

वार्षिक चन्दा
५) पाँच रुपये

बन्धन यही कहलाय है ।

‘मैं’ ‘तू’ नहीं पहचाना, विषयी विषय नहि जानना ।
आत्मा अनात्मा मानना, निज अन्य नहीं पहिचानना ॥
चेतन अचेतन जानना, अति पाप माना जाय है ।
सन्ताप यह ही देय है, बन्धन यही कहलाय है ॥

क्या ईश है ? क्या जीव है ? यह विश्व कैसे बन गया ।
पावन परम निस्संग आत्मा, संग में क्यों सन गया ॥
सुख-सिन्धु आत्मा एक रस, सो दुःख कैसे पाय है ।
कारण न इसका जानना, बन्धन यही कहलाय है ॥

इस देह को 'मैं' मानना, या इन्द्रियाँ 'मैं' जानना ।
 अभिमान करना चित्त में, या बुद्धि में पहचानना ॥
 देहादि के अभिमान से, नर मूढ़ दुःख उठाय है ।
 बहु योनियों में जन्मता, बन्धन यही कहलाय है ॥
 बेड़ी कठिन है कामना, आसक्ति दृढ़तम जाल है ।
 ममता भयंकर राक्षसी, संकल्प काल ब्याल है ॥
 इन शत्रुओं के वश हुआ, जन्में मरे पछताय है ।
 सुख से कभी सोता नहीं, बन्धन यही कहलाय है ॥
 यह है भला, यह है बुरा, यह पुण्य है, यह पाप है ।
 यह लाभ है, यह हानि है, यह शीत है, यह ताप है ॥
 यह ग्राह्य है, यह त्याज्य है, यह आय है, यह जाय है ।
 इस भाँति मन की कल्पना, बन्धन यही कहलाय है ॥
 श्रोत्रादिको 'मैं' मान नर, शब्दादि में फँस जाय है ।
 अनुकूल में सुख मानता, प्रतिकूल में दुःख पाय है ॥
 पाकर विषय है हर्षता, नहि पाय तब घबराय है ।
 आसक्त होना भोग में, बन्धन यही कहलाय है ॥
 सत्संग में जाता नहीं, नहि वेद-आज्ञा मानता ।
 सुनता न हित उपदेश अपनी, तान उलटी तानता ॥
 शिष्टाचरण करता नहीं, दुष्टाचरण ही भाय है ।
 कहते इसे ही मूढ़ता, बन्धन यही कहलाय है ॥
 यह चित्त जब तक चाहता, या विश्व में है दौड़ता ।
 करता किसी को है ग्रहण, अथवा किसी को छोड़ता ॥
 सुख पाय के है हर्षता, दुःख देखकर सकुचाय है ।
 भोला ! न तब तक मोक्ष हो, बन्धन यही कहलाय है ॥

—श्री भोला बाबा



धारावाहिक

निर्गुण महारामायण

(राम रावण परमतत्त्व विचार—एक संक्षिप्त अध्ययन)

आचार्य भद्रसेन वैद्य

(गतांक से आगे)

युक्ति अनुकूल अनुभव बिच आई ❀ सो सब सोध कहौं रे भाई ।
पुलस्त्य नाम पूरण का होई ❀ सर्वव्यापी ॐ कहावत सोई ॥

“निर्गुण महारामायण” ग्रन्थके रचयिता बाबा शारदाराम जी कहते हैं—राम-रावणके विषयमें जो कुछ अनुभवमें आया है तथा जो आत्मानुकूल प्रतीत हुआ है उसे शोधकर युक्ति पूर्वक कह रहा हूँ । कुछ कहनेके पूर्वही बाबाजी स्पष्ट कर दिये हैं कि यहाँ जो कुछ कहा जा रहा है वह स्वानुभूत है । केवल पुस्तकमें पढ़ा अथवा सुना हुआ नहीं है । और न ही यह इन्द्रियोंका विषय है । जैसे वैज्ञानिक पर्याप्त अनुसन्धानके बादही प्रत्यक्ष अनुभव होने पर किसी अविष्कारको सर्व साधारणके लिये प्रकट करते हैं वैसेही बाबाजी भी विवेक, विचार तथा अन्वय-व्यतिरेक द्वारा पर्याप्त शोध करनेके बाद जो अनुभवमें आया है उसे ही लिख रहे हैं । ‘सोध’का अर्थ विचार भी है । बिना विचारके विद्याकी प्राप्ति नहीं होती । और विद्यासे ही मुक्ति होती है, जीव जगत और परमात्माका रहस्य खुलता है । शास्त्रोंका आदेश भी है—

“सदा विचारयेत तस्माज्जगज्जीवपरात्मनः ॥ पंचदशी ६-१२ ॥

सदा ही जगत्, जीव और परमात्मा तीनोंका विचार करना चाहिये । विचारसे विद्या और अनुभव प्रकट होता है । “विद्या या सा विमुक्तये ।” सही अर्थोंमें विद्या उसीको कहा जा सकता है जो जीवको इस सकल दुःख प्रपंचसे मुक्त करे और आत्म-अनात्म तत्वका सही सही बोध कराए ।

यहाँ बाबाजी “अनकूल” शब्दसे तत्त्व शोधनके लिए एक सरल कसौटी प्रस्तुत कर रहे हैं । अनुकूलका अर्थ है जो प्रतिकूल न हो । जो प्रतिकूल है वह अनात्मा और नाशवान है ।

जो अनुकूल है वह आत्मा और अविनाशी है। यही पूर्ण, सर्वव्यापक सत्-चित्-आनन्द है। यही समस्त प्रपंचका आदि कारण है। इसीमें समस्त सृष्टि बालूमें जल और आकाशमें नीलमा की तरह भासती है। यह पूर्ण ब्रह्म सबका पिता, सर्वका कर्ता और अकर्ता दोनों हैं। जैसे सेना युद्ध करती है परन्तु वह बिना राजाके हुक्मसे युद्ध नहीं करती इस लिये राजा कर्ता है और वह स्वयं युद्ध करने रणभूमिमें नहीं गया इसलिये अकर्ता है। ऐसे ही ब्रह्मकी शक्तिसे माया सकल प्रपंचको रचती है। फिर भी ब्रह्म अकर्ता और पूर्ण है। उसमें कोई कमी-बेशी नहीं होती। क्योंकि—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

इस पूर्ण ब्रह्मसे मनरूपी रावणका कुल-परिवार कैसे उत्पन्न हो गया, इसीको आगे बाबाजी युक्ति पूर्वक बतला रहे हैं—इस पूर्ण ब्रह्मका नामही पुलस्य है और यह सर्वत्र व्यापक है। इसीको ॐ भी कहते हैं। इसीसे अनात्म जगतकी उत्पत्ति हुई है। जो कुछ भी दीख रहा है सब ब्रह्म ही है। ब्रह्मही विवर्त रूपसे इस जगतका निमित्तोपादान कारण है। भाव यह है कि ब्रह्म निमित्त कारण भी है और उपादान कारण भी है। जैसे घड़ेका उपादान कारण मिट्टी है और निमित्त कारण कुम्हार है। घड़ेका निमित्त और उपादान कारण अलग अलग है परन्तु यहाँ पूरण ब्रह्म जगतका निमित्त कारण भी है और उपादान कारण भी हैं। जैसे जल और लहरमें नाम-रूपका भेद होते हुए तत्त्वतः केवल जल ही है जलके अतिरिक्त और कुछ नहीं वैसे ही ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

तिसका पुत्र विश्वश्रवा होई ❀ पंचतत्त्वका नाम विश्वश्रवा सोई ।

सो पाँचो तत्त्व विश्व रचाई ❀ ब्रह्मकी माया फैली भाई ॥

बाबाजी कहते हैं, यह सब उस पुलस्य नाम ब्रह्मकी माया फैली हुई है। इस त्रिगुणात्मक मायाके तम प्रधान अंशसे पंच तत्त्व अर्थात् पाँच सूक्ष्म महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई है। इन्हीं पाँच तत्त्वोंका नाम विश्वश्रवा है। इसीको पुलस्य (ब्रह्म) का पुत्र कहते हैं। ये विश्वश्रवा नामक पंचतत्त्व सकल विश्वकी रचना करते हैं।

जैसे पुरुष स्त्रीके बिना पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं है वैसे ही ब्रह्म भी माया बिना पुत्र नहीं उत्पन्न कर सकता है। क्योंकि ब्रह्म करते हुए भी अकर्ता है। ब्रह्मकी लेश मात्र शक्ति प्राप्त कर माया सृजन करती है।

ब्रह्मका अज्ञानही माया है। इस अज्ञानसे ही ब्रह्ममें जगतका भ्रम होता है। 'जैसे ठूँठमें

पुरुषका और रस्सीमें सर्पका भ्रम अन्धकारमें ही सम्भव है वैसेही ब्रह्ममें जगतका भ्रम स्वस्वरूपके अज्ञान अर्थात् माया द्वाराही सम्भव है। इसी ओर इंगित करते हुए बाबाजी कहते हैं—“ब्रह्मकी माया फैली भाई।” जैसे अन्धकार फैला हुआ है वैसेही माया फैली हुई है। यह परछाईकी तरह है। यह माया ब्रह्मसे भिन्न नहीं, उसीकी छाया है। जैसे उष्णता अग्निसे अलग नहीं। वैसे ही मायाभी ब्रह्मके साथ ही साथ है। दोनों अनादि हैं दोनों अनन्त हैं। परन्तु माया अज्ञान पर्यन्तही अनादि अनन्त है। इसीलिये “ब्रह्मकी माया” ऐसा कहा जाता है। अन्तर इतना है कि ब्रह्म स्वरूपसे अनादि और अनन्त है परन्तु मायाका विस्तार प्रवाह रूपसे अनादि और सान्त है। जबसे स्वरूपका अज्ञान हुआ तबसे माया फैली है और ब्रह्म विद्या द्वारा स्वरूपका ज्ञान होते ही मायाका अन्त हो जाता है। केवल अनादि अनन्त ब्रह्मही शेष बचता है।

जैसे स्त्री पुरुषसे बीज रूपमें शक्ति प्राप्तकर पुत्र उत्पन्न करती है वैसे ही ब्रह्मके सानिध्यसे शक्तिमान होकर माया अपने तमः प्रधान अंशसे विश्वकी रचना करनेमें समर्थ विश्वश्रवा नामक पुत्र अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पाँच तत्वोंको उत्पन्न करती है। इन पाँचो तत्वोंसे सकल विश्वकी रचना हुई है। इनके पञ्चीकरणसे ही स्थूल सृष्टि उत्पन्न होती है।

पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्यः स्थूलेभ्यः पूर्वकर्मणा।

समुत्पन्नमिदं स्थूलं भोगायतनमात्मनः ॥ विवेक चूड़ामणि

पञ्चीकृत स्थूल भूतोंसे पूर्व कर्मानुसार उत्पन्न हुआ यह शरीर आत्माका स्थूल भोगायतन है।

पञ्चभूतोंके पञ्चीकरणकी विधि बतलाते हुए पञ्चदशीकार कहते हैं—

द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः।

स्वस्वेतर द्वितीयांशैर्योजनात् पञ्च पञ्च ते ॥ पञ्चदशी २७ ॥

आकाशादि प्रत्येक भूतोंके पहले दो दो भाग किए जाँय। फिर उनमेंके पहले एक भागके चार चार भाग किए जाँय। उसके बाद अपने तथा अपनेसे भिन्न दूसरे चारों भूतोंके दूसरे स्थूल भागोंके साथ योग करनेसे ये पाँचो भूत पञ्चीकृत हो जाते हैं। पञ्चीकृत प्रत्येक भूतमें आधा भाग अपना है और आधेमें शेष चार भूत बराबर बराबर हैं।

बाबाजीका भी यहाँ भाव यही है कि ब्रह्म और मायाके संयोगसे विश्वश्रवा (पञ्चतत्त्व) नामक पुत्र उत्पन्न है। उसीसे यह विश्व रचा गया है। यही पुलस्त्य नामवाले ब्रह्मका पुत्र है। जैसे लोकमें पुत्र माताके गर्भसे उत्पन्न होकर पिताके नामसे प्रचारित होता है वैसे ही स्वस्वरूप के अज्ञान रूप मायाके अन्दर भासने वाला यह पञ्चतत्त्व रूप विश्वश्रवा नामक पुत्र अपने पिता

पुलस्त्यके नामसे ही प्रचारित हुआ। 'तिसका पुत्र' इस शब्दसे बाबाजीने मेरी समझसे इसी ओर इंगित किया है। पुत्र पिताका सम्बन्ध अंश-अंशीके समान होता है। जीव पुत्र है ब्रह्म पिता है। पिता पुत्र दोनों अविनाशी और नित्य हैं। माया तो स्थूल प्रपंचका अध्यास (अम) कराने वाली नश्वर, असत्, जड़ और अनित्य है। इसीलिए सब कुछ करते हुए भी मायाको कर्ता नहीं कहते हैं। क्योंकि वह स्वयं कुछ करनेमें समर्थ नहीं है। तत्व दृष्टिसे तो मायाका कोई अस्तित्व ही नहीं है। जैसे रस्सीमें दीखने वाले साँपका कोई अस्तित्व नहीं केवल अम मात्र है वैसे ही ब्रह्ममें दीखनेवाली माया केवल अम मात्र है। यह तभी तक दीखती है जब तक स्वरूपका अज्ञान बना रहता है। इस अज्ञान कालमें ही अद्रव्य, एक रस, निर्विकार, पूर्ण ब्रह्मसे विश्वश्रवाकी उत्पत्ति होनेका अम होता है। इस विश्वका शरीर मायाकृत है और उस शरीरका अभिमानी आत्मा परमपिता ॐ ब्रह्मके बिम्बका प्रतिबिम्ब मात्र है।

पाँच तत्वका सत्ता अंश जो होई ❀ मन नाम कहावत है सोई।

ब्रह्म के बस में सब है भाई ❀ निरंकार ब्रह्म यह खेल रचाई ॥

रावणकी उत्पत्ति बतलाते हुए बाबाजी कहते हैं—आकाश आदि पंचभूतोंके सत्त्व अंशसे मन उत्पन्न हुआ। अर्थात् पाँच तत्वोंका सम्मिलित सत्त्वांश ही मन है। उपर पंचतत्त्व का नाम विश्वश्रवा कहा गया है। विश्वश्रवाके पुत्रका नाम रावण है इसलिये पंचतत्त्वोंका सत्त्वांश मन ही रावण हुआ।

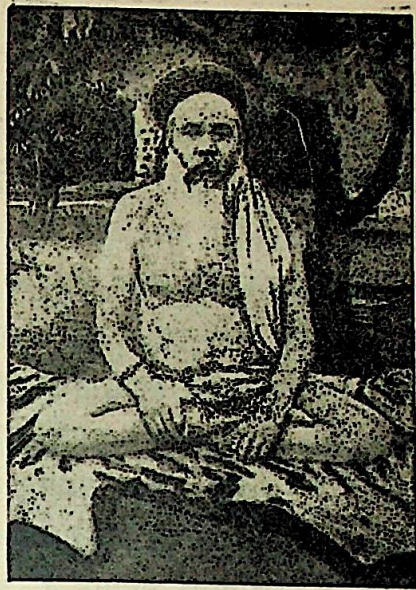
मनसे अन्तःकरण समझना चाहिये। मन अन्तःकरणकी वृत्तिका नाम है। व्यवहारमें चार वृत्तियों वाले अन्तःकरणको भी मन ही कहते हैं। सूक्ष्म दृष्टिसे वृत्ति भेदके कारण मन, बुद्धि, अहंकार चित्त, इन चारोंको अन्तःकरण कहते हैं। इसीको संकल्प विकल्प करनेके कारण मन, पदार्थका निश्चय करनेके कारण बुद्धि, मैं मैं करके अभिमान करनेके कारण अहंकार और चिन्तन करनेके कारण चित्त कहते हैं। बाबाजी यहाँ अन्तःकरणको ही मन नामसे सम्बोधित करते हैं क्योंकि यह लोकमें अधिक प्रसिद्ध है। पाँच तत्वका सत्त्व अंश ही मन नामसे कहा जाता है। यह मन रावण संकल्प विकल्पवाला, बुद्धिमान पंडित, अत्यन्त अहंकारी और बलवान है। यह अपने आगे किसीको भी कुछ नहीं समझता है।

बाबाजी आगे कहते हैं—सभी चराचर ब्रह्माण्ड परब्रह्म परमात्माके वशमें है, उसके अधीन है। जैसे अँगूठी, हार, मुकुट आदिमें सोना ओत प्रोत है, लहरमें जल ओत प्रोत है सोना और जलके बिना अँगूठी, हार, मुकुट तथा लहरोंका अलग अपना कोई अस्तित्व नहीं है वैसे ही इस अखिल ब्रह्माण्डमें ब्रह्म ही ओत प्रोत है। ब्रह्मके बिना यह जगत बन्ध्यापुत्रकी (शेष पृ० ३७ में देखिये)

सन्त वाणी

सद्गुरु बाबा शारदाराम
मुनि जी महाराजका

प्रवचन



०

ॐ ब्रह्म को सिरनाय के, आत्म करो विचार ।

सदा सबहि ॐ स्तुति, कर रहे वेद पुकार ॥

आई, बहनों, सज्जनों ! गत दो सोमवारसे
गुरु नानक देव जीकी वाणी पैतीस अक्षरीमें से
१० शब्दोंका विवेचन किया । आज भी भगवान
की कृपासे ५ अक्षर सुनानेका विचार है ।

चाप ज्ञान करि जाहे विराजै ।

छाया द्वैत सगल उठ भाजै ॥

जागृत, सुपन, सखोपत तुरिया ।

आतम भूपत की एह सुरिया ॥

भुनतकार अनहद घनघोरं ।

त्रिकुटी भीतर अति छब जोरं ॥

ज्ञानत जोगी एह रस बाता ।

सोहं सबद अमी रस माता ॥

चा. छा. जा. भा. ज्ञा ॥

इन पाँच अक्षरोंमें ब्रह्मज्ञानका वर्णन
किया गया है । चापका मतलब है धनुष ।
धनुषसे अपने दुश्मनोंका नाश किया जाता

है । जहाँ चाप रूपी ज्ञान निवास करता है,
जहाँ धनुष रूपी ज्ञान निवास करता है, उसके
प्रभावसे दुश्मनोंका नाश होता है । अब दुश्मन
कौन है ? यहाँ पर दुश्मन है द्वैत । काम,
क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये भी दुश्मन
ही हैं । छाया क्या है ? जैसे हम लोगोंका
शरीर है, जो जड़ है उसकी छाया पड़ती है ।
छाया आकृतिकी बनती है । जैसी आकृति
मिलेगी वैसी ही छाया रहेगी । इसका मतलब
यह हुआ कि छाया यह शरीरके अधीन है,
आकृतिके अधीन है ।

अद्वैत कहनेसे ब्रह्म, ब्रह्म है सो बाधा
रहित है, निर्विकार है । उस निर्विकारकी माया-
ही उसकी छाया है । विश्वकी रचना ही प्रभुकी
छाया है । भगवान गीतामें कहते हैं कि जो
हमारी माया है वह अति दुस्तर है । मैं ब्रह्म

हूँ। मेरी माया भी ब्रह्म ही है। मायामें महान शक्ति है उसमें ब्रह्मकी तरह असीम शक्ति है। मायाका ब्रह्मज्ञानके बिना नाश नहीं होता। कैसे? जैसे दोपहरके बारह बजे सूरज ठीक उपर होता है उस समय छाया पांवके नीचे होती है, दिखाई नहीं देती, उसका नाश हो जाता है। उसी प्रकार जब ब्रह्मज्ञान हो जाएगा, द्वैत भाव नष्ट हो जाएगा, अपने आपको ब्रह्ममय देखने लगेगा, सबको ब्रह्ममय देखने लगेगा तब मायाका नाश हो जाएगा। कहनेका मतलब है कि माया अनादि है, असीम बलवाली है, महान है, दुस्तर है परन्तु उसका अंत भी है। कब? जब ब्रह्मज्ञानसे मायाका प्रभाव नष्ट हो जाएगा। फिर केवल एक ब्रह्म, वासुदेव, ज्योतिस्वरूप परमात्मा ही रह जाएगा। रामायण में एक जगह आता है :—

शंकर चाप जहाज,

डूबे सकल समाज,

प्रथम चढ़े जो मोहवश ॥

एक बार सीता जीने जगह साफ करते करते शंकर धनुष को उठा लिया। यह देख कर जनक जी ने सोचा कि सीतामें तो महान शक्ति है। इसके लिए वर भी महान होना चाहिए। इस प्रकार विचार करने के बाद फिर जनक जीने सीताजीके लिए स्वयंवर की योजनाकी और बड़े बड़े राजाओं को आमंत्रण भेजा। उनमें रावण भी आया हुआ था और रामचंद्रजी भी वहाँ पर आ पहुँचे। यह धनुष रावणने ही रखा था लेकिन फिर उठा

नहीं पाया। इसका दृष्टांत है कि रावण ने शिवजीका तप किया था। शिव जीने प्रसन्न होकर रावण को धनुष दिए और कहा कि इसे कहीं रखना नहीं यदि रखा तो फिर उठा नहीं सकोगे। लंकामें रखना तो उठेगा।

जब रावण धनुष लेकर आ रहा था तो मार्गमें लघुशंका लगी। रावण सोचमें पड़ गया कि धनुष को रख दिया तो फिर उठेगा नहीं और यदि साथमें पकड़े रखा तो भी अपवित्र हो जाएगा। इतना सोच ही रहा था कि स्वयं भगवान् वृद्धके रूपमें वहाँ आए। उन्हें देखकर रावण ने कहा—जरा इस धनुष को पकड़ो हम लघुशंका कारलें। भगवानने धनुष पकड़ लिया। रावणको लघुशंकामें बहुत देर हो गई। भगवानने कहा—तुम्हारा धनुष बड़ा वजनदार है हमसे उठाया नहीं जाता इतना कहकर भगवानने धनुष जमीन पर रख दिए और चले गए। फिर रावणसे वह धनुष नहीं उठा और निराश होकर चला गया। जनक जी हमेशा इस धनुषकी पूजा करते थे। एक दिन सीता जी वहाँ लेप करने गईं तो उन्होंने धनुष को उठाकर नीचे लेप किया, तब राजा जनकने प्रण किया था। तुलसी दासजी लिखते हैं

“शंकर चाप जहाज” यहाँ पर धनुष रूपी जहाज है। बाह रूपी सागर है। सब लोग धनुष तोड़ने आए थे, सीताजी को पानेकी इच्छासे। परन्तु सब बाह रूपी सागरमें डूब गए। तोड़ने रूपी बैठने आए थे, तोड़ नहीं पाये।

पार नहीं पा सके। मोहवश जो पहले बैठे हैं वह डूबे हैं। रामजी व्यापक वस्तु हैं। सूक्ष्म वस्तु बैठेगा।

एक बात और है चाप या धनुष कहाँ रहता है? विष्णुका धनुष 'सारंग' बैकुण्ठमें है। शिवजीका धनुष 'पिनाक' कैलाशमें है। अर्जुनका गाण्डीव धनुष हस्तिनापुरमें है। ज्ञानरूपी चाप जो है सो व्यापक है। ज्ञान है सबको, किसीको भौतिक किसीको आध्यात्मिक। ज्ञान शुन्यसे व्यवहार नहीं चलेगा। बाकीके धनुष एक विशेष स्थान पर हैं। ज्ञान प्राणी मात्रमें है। चींटियोंको एक तरफसे रोको वे दूसरी तरफ चली जाएंगी। क्योंकि उनके मार्गमें बाधा उत्पन्न हो गया। एक कहावत है।

जाकै कुलमें जौन हैं, ताके कुलमें तौन।

हर एकका स्वभाव उसके वंशानुसार ही होता है। बाघ शेर को कहते हैं उसमें भी ज्ञान है। वे देखते हैं कि फलानी वस्तु हमारा खाद्य है। उनमें भी ज्ञान है। लेकिन उनका ज्ञान भौतिक है। आध्यात्मिक ज्ञान है :— भगवत् भजन। अनेक जन्मके आध्यात्मिक ज्ञानके एकत्र होने पर अन्तमें मुक्त होगा।

आत्माके चार बंगले हैं। जिस प्रकार राजाओंके अलग अलग बंगले होते हैं। कच-हरीका अलग स्थान होता है, भोजनका अलग होता है, मनोरंजनका अलग होता है। शयन-के लिए अलग होता है। इसी प्रकार आत्मा के चार बंगले हैं। जागृत, स्वप्न, सखोपत

और तुरिया ये चार बंगले हैं। (१) जागृत जब हम बातचीत करते हैं चलते फिरते हैं तो आत्माका निवास नेत्रोंमें रहता है। (२) स्वप्न जब पूरा नींद नहीं होता है अर्धनींदमें होते हैं उस समय आत्मा कंठमें रहता है। (३) जब घोर निद्रामें रहते हैं तब आत्माका निवास हृदयमें रहता है। सुबह उठकर जीव बोलता है आज हम सुखकी नींद सोया। (४) तुरिया सबसे ऊँचा मुक्तिपद है। उस समय आत्माका निवास दसवें द्वारमें होता है। नेत्र, कंठ, हृदयसे परे ब्रह्ममय सबसे ऊँचा मकान है। तुरियाका मतलब समझलो आदमी मर जाता है तो विस्मृत हो जाता है। तुरिया सबसे विस्मृत है। परमानन्द स्वरूप हो जाता है। ब्रह्ममय हो जाता है।

भुन्नकार अनहद घन घोरं

जिनको अभ्यास है उनको रात दिन अनहद नाद सुनाई देता रहता है। अभ्यास वालोंकी समाधि लग जाती है। त्रिकुटीमें जैसे दाहिना गंगा, बायां जमुना और बीच वाली सरस्वती ऐसा मानते हैं। त्रिकुटीमें ध्यान लगाने वालोंकी समाधि लग जाती है। वह अति छवि में मग्न हो जाता है। आत्मामें लीन हो जाता है। सिख समाजमें बंदा बहादुर हुए हैं उनकी लड़ाईमें ही समाधि लग जाती थी। खलीफाका जब नमाज पढ़नेका समय आ जाता था तब वह हर काम छोड़कर नमाज पढ़ता था।

भगवान गीतामें अर्जुन को उपदेश करते

हैं। तुम युद्ध करो, फलकी, परिणामकी चिंता मत करो। कोई काम मुश्किल नहीं है। मेरा चिंतन करो, किसीका डर नहीं है। आगे महाराज उपदेश करते हैं:—योगीजन, आत्मा को परमात्मामें लीन कर देते हैं। आगे लय योगका वर्णन करते हैं। मस्तकमें सोऽहम् को अभ्याससे बढ़ाया जाए तभी ज्ञानकी प्राप्ति होती है। ब्रह्म है सो हम हैं, हम हैं सो ब्रह्म है। अभ्यास से सोऽहम् को प्रकट करते हैं। यह अभ्यास अन्दरके दुश्मनका नाश करता है। आज भगवानकी कृपासे पाँच अक्षरोंका वर्णन किया। जो जितना सुन समझ सकेगा उतना ही फल मिलेगा। इति शुभम्।

संग्रह कर्ता—सरदार शाह सलुजे

भगवानकी अद्भुत लीला

हे जीवन धन प्राण तुम्हें, हम क्या माने भगवान ॥
 माखन मिश्री खाते देखा, चावल छीन चबाते देखा।
 द्रौपदि चोर बढ़ाते देखा, चोर चोर पहिचान ॥१॥
 राधा छबि रसमाते देखा, कुबरी के घर जाते देखा।
 गीता ज्ञान सुनाते देखा, रमणी जन रति मान ॥२॥
 खल दल सकल नसाते देखा, रणमें पीठ दिखाते देखा।
 सबसे आदर पाते देखा, पारथके रथवान ॥३॥
 अपनी बात निभाते देखा, प्रणं तजि चक्र चलाते देखा।
 रूप विराट बनाते देखा, डरते हाऊ जान ॥४॥
 ग्रह से गजहि बचाते देखा, अपना वंश नशाते देखा।
 सबके आगे आते देखा, रहते अन्तर्ध्यान ॥५॥
 रूप अनेक बनाते देखा, निराकार हो जाते देखा।
 मातु गर्भमें आते देखा, मुखमें विश्व महान ॥६॥
 पितु दुख दुखित न होते देखा, गीघ गोद लै रोते देखा।
 हंस कहीं हो कुसुमसे कोमल, हो कहीं कुलिश समान ॥७॥

ॐकारकी चार मात्रा और आत्माके चार पाद

[— बाबा रघुवंशदास जी—]



यह ॐकार शब्द उस ब्रह्मका वाचक है और ब्रह्म उसका वाच्य है, वाच्य वाचकका अभेद होता है। जिस नामके लेनेसे जिस वस्तु का बोध हो वह नाम उस वस्तुका वाचक होता है और वह वस्तु उस नामकी वाच्य कही जाती है। ॐकारके उच्चारण करनेसे ब्रह्मका बोध होता है। इसलिये ॐकार ब्रह्मका वाचक है और ब्रह्म उसका वाच्य है। तात्पर्य यह ॐकार ब्रह्मके सम्पूर्ण नामोंमें खास नाम यानी निज-नाम है। इसके स्मरणसे ब्रह्मात्माके चार पाद सकल ऐश्वर्यका ज्ञान होता है। अर्थात्-विराट् हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ईश्वर साक्षी। विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय तथा अकार, उकार, मकार और मात्रारूप ॐकारका अभेद ज्ञान होता है और ब्रह्मात्माका अभेद ज्ञान होने पर मनुष्य को मुक्ति आदि समस्त लाभ स्वतः ही प्राप्त होते हैं।

ॐ भद्रङ्कणैभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्ये-
माक्षमिर्यजत्राः स्थिरै रङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्य-
शेमहि देवहितंयदायुः ॥

अर्थ:—हे पूजन करने वालेकी रक्षा करने वाले देवताओं तुम्हारे प्रसादसे कानों द्वारा कल्याणको सुने हम और नेत्रों द्वारा कल्याणको हम और स्थिर याने दृढ़ अंगों करके और स्थिर

याने दृढ़ शरीर करके आपकी सदा स्तुति करते हुए हम आयुको, जो कि देवताओंके लिये हित है याने यज्ञ दानादिकोंसे देवताका हित करने वाले है प्राप्त होवें हमारे तापत्रय याने आध्यात्मिक, आदिदैविक, आधिभौतिककी शान्ति होवे।

“ॐ मित्येतदक्षर मिदं सर्वं तस्योप-
व्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोकार
एव यच्चान्यत्रिकालातीतं तदप्योकार
एव ॥

अर्थ:—जो यह वाच्यवाचक अथवा शब्द शब्दार्थ सब हैं वह ॐकार अक्षर करके उसी प्रणवके विशेष ज्ञान द्वारा परब्रह्मके प्राप्ति का कथन किया जाता है जो भूत, भविष्य, वर्त्तमान करके हैं सो सब प्रणव रूप ही है और जो कालत्रयसे पृथक् अव्याकृतादि हैं वह भी प्रणवरूप ही है।

“सर्वद्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा
चतुष्पात् ॥

यह सब ॐकार रूप ब्रह्म है वही यह ब्रह्म प्रसिद्ध आत्मा हृदयाकाशमें स्थित है वह ही यह आत्मा विश्व तैजस, प्राज्ञ और तुरीय के भेदसे चार पाद वाला है।

(विश्वात्माका वर्णन)

“जागरित स्थानो बहिः प्रज्ञः सप्तांग

एकोन विंशति मुखःस्थूल भुवैश्वानरः प्रथमः
पादः ॥

अर्थ :—जाग्रत अवस्था है स्थान जिसका ब्राह्म विषयों में हैं बुद्धि जिसकी सात हैं अंग जिसके उन्नीस हैं मुख जिसके शब्दादि स्थूल विषयोंका भोक्ता है जो सो प्रथम पाद वैश्वानर हैं ।

(तेजसात्माका वर्णन)

“स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्तांगएकोन-
विंशति मुखः प्रविभक्त मुक्तैजसोद्वितीयः
पादः ॥

अर्थ :—स्वप्न अवस्था है स्थान जिसका अन्तर्मुख है प्रज्ञा जिसकी पूर्वांक्ति सात हैं अंग जिसके पूर्वोक्त उन्नीस हैं मुख जिसके अन्तःकरणकी वृत्ति द्वारा वासनामय सूक्ष्मभोगोंका भोक्ता है जो सो दूसरा पाद तैजस नाम वाला है ।

(प्राज्ञात्माका वर्णन)

“यत्रसुप्तोन कंचन कामं कामयते न
कंचन स्वप्नंपश्यति तन्सुप्तम् सुषुप्तस्थान
एकी भूतः प्रज्ञानघन एवानन्द मयोद्धानन्दभुक्
चैतोमुखः प्राज्ञस्त्वृतीयः पादः ॥

अर्थ :—जिस काल में सोया हुआ पुरुष न किसी स्थूल या सूक्ष्म भोगको जानता है और न किसी कामनाको चाहता है, न किसी स्वप्नको देखता है वह सुषुप्ति अवस्थाका लक्षण है; सुषुप्ति है स्थान जिसका एक रस है जो, अविद्या द्वारा आच्छादित है प्रज्ञा जिसकी,

आनन्दमय हुआ अवश्य आनन्दका भोक्ता है जो, बोधस्वरूप है जो, सो तीसरा पाद प्राज्ञ नाम वाला आत्मा है ।

“एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्गम्येष-
योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौहि भूतानाम् ॥६॥”

पदार्थ :—यही प्राज्ञ जब उपाधि मायाको त्यागके अपने चैतन्य स्वरूप में स्थित होता है तब सबका ईश्वर है यही सर्वज्ञ है यही अन्तर्यामी है यही सबका आदि कारण है यही सम्पूर्ण भूतोंके उत्पत्ति और लयका स्थान है ।

(तुरीयात्माका वर्णन)

नान्तः प्रज्ञ न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न
प्रज्ञा न धनं न प्रज्ञं ना प्रज्ञं अदृष्टव्यवहाद्यर्म-
प्राह्यमलक्षणमचिन्त्यम् व्यपदेश्यमेकात्म्य प्रत्यय-
सारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं
मन्यन्ते स आत्मासविज्ञेयः ॥

अर्थ :—जिस चतुर्थ पाद तुरीयको न विश्वसंज्ञक न तैजस संज्ञक न जाग्रत स्वप्न दोनोंके मध्य अवस्था वाला न प्राज्ञसंज्ञक न ज्ञान स्वरूप न अज्ञान स्वरूप न देखने योग्य न व्यवहारके योग्य न कर्मेन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने योग्य न लिंग रूप न चिन्ता करने योग्य न शब्द द्वारा कहने योग्य सृष्टिसे पृथक् राग द्वेषादि रहित कल्याणरूप द्वेष रहित जाग्रत आदि चारों अवस्था में एक मानते हैं वही आत्मा जानने योग्य है ।

“सोऽयमात्मा अव्यक्तरमोंकारोऽधिमात्रं-
पादामात्रामात्रश्चपादाश्चकारोमकार इति ॥

अर्थ :—जो चतुष्पाद वाला आत्मा है सोई इस ओंकार अक्षर में स्थित है वही ओंकार मात्रा में स्थित है वे मात्रा अक्षर उकार मकार द्वारा स्थित है इसी कारण मात्रा ही पाद है और पाद ही मात्रा है ।

“जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽप्तेसदिमत्वाद्वाऽऽप्नोति हवैसर्वान्कामान-दिश्व भवति य एवं वेद” ॥

अर्थ :—व्याप्तिके कारण और प्रथम होने के कारण जाग्रतवाला वैश्वानर ही अक्षर रूप प्रथम मात्रा है जो प्रथम मात्राका उपासक निश्चय करके इस प्रकार अक्षर और वैश्वानरके अभेद को जानता है वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है और ज्येष्ठ श्रेष्ठोंके मध्य प्रतिष्ठा वाला होता है ।

“स्वप्नस्थानस्तैजसउकारोद्वितीया मात्रो-त्कर्षादुभयत्वाद्बोत्कर्षति हवैज्ञानसन्ततिं समा-नश्च भवति नास्याऽब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद” ॥१०॥

अर्थ :—प्रथम मात्रासे उत्कृष्ट होनेके कारण और अक्षर और मकारके मध्य में स्थित होनेके कारण उकारस्वप्नस्थानी तैजस दूसरी मात्रा है जो उपासक इस प्रकार उकार और तैजसकी एकताको जानता है वह उपासक ज्ञानकी वृद्धिको बढ़ाता है और शत्रु मित्र आदि-कोंसे समभाव वाला होता है और उसके कुल में कोई ब्रह्मका न जानने वाला नहीं होता है ।

“सुषुप्तस्थानः प्राज्ञोमकारस्तृतीया मात्रा-

मितेर पीतेर्वा मिनोति हवाद्दे सर्वमपीतिश्च भवतियएवं वेद” ॥११॥

अर्थ :—अक्षर और उकार अथवा विश्व और तैजस मकार या प्राज्ञ में लीन होकर उत्पन्न होनेसे और अज्ञानरूप कारण तीनों अवस्थाओंमें एक होनेसे अथवा अक्षर उकार मकारकी एकता होनेसे सुषुप्ति अवस्था वाला प्राज्ञ मकाररूप तीसरी मात्रा है । जो उपासक इस प्रकार जानता है निश्चय करके वह इस सारे जगतको यथार्थ जानता है और जगतका कारणरूप आत्मा होता है ।

“अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवाऽद्वैतएवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽ-त्मानं य एवं वेद य एवं वेद” ॥१२॥

अर्थ :—उक्त प्रकार अमात्रतुरीय मन और बाणीका अगम्य सकारण प्रपञ्चका नाशक कल्याण स्वरूप द्वैत रहित आत्मरूप ओंकार है जो उपासक इस प्रकार जानता है वह आत्मा द्वारा आत्मामें निःसंदेह लीन होता है याने ब्रह्मरूप ही हो जाता है ।

अक्षर मात्राके ध्यानका फल—जो मनुष्य ब्रह्मके चार पादों में का प्रथम पाद विराटका और आत्माके चार पादों में का प्रथम पाद विश्वका और ओंकारकी प्रथम मात्रा अक्षरको एक रूप जानकर उपासना करता है वह सम्पूर्ण कामनाओंको अर्थात् मनोकामनाओंको प्राप्त होता है और बड़े पुरुषोंमें मान पाता है ।

उकार मात्राके ध्यानका फल :—जो

मनुष्य ब्रह्मके द्वितीय पाद हिरण्यगर्भको और आत्माके द्वितीय पाद तैजसको तथा ओंकारकी द्वितीय मात्रा उकारको अभेद रूपसे चिन्तन करता है वह उपासक ज्ञानकी वृद्धिको प्राप्त होता है और शत्रु मित्रादिकोंमें सम भावनाला होता है और उसकी सन्तान ब्रह्मज्ञानी होती है।

मकार मात्राके ध्यानका फल :—जो मनुष्य ब्रह्मके तीसरे पाद ईश्वरको आत्माके तीसरेपाद प्राज्ञको और ओंकारके तृतीयपाद मकारको एक जानकर ध्यान करता है वह इस सारे संसारको

जानता है और इस सम्पूर्ण जगतका कारणरूप आत्मा होता है।

अमात्राके ध्यानका फल :—जो मनुष्य ब्रह्मको और कूटस्थ आत्मारूप तुरीयको और अमात्रा रूप ओंकारको एकरूप करके चिन्तन करता है वह उपासक जीवन्मुक्त होता है और आवागमनसे छूटकर ब्रह्मरूप हो जाता है।

इस प्रकार ओंकारकी चार मात्राओं द्वारा ईश्वरके गुणोंका और सकल ऐश्वर्यका बोध होता है।

अनमोल बोल

महा पुण्य रूपी धन के बदले में तूने यह काया रूपी नाव, दुःख रूपी भव-सागर से पार होने के लिए खरीदी है, यह जब तक टूटे नहीं तब तक इसके द्वारा पार उतर जा। विचार बिना अन्य किसी साधन से ज्ञान उत्पन्न नहीं होता जैसे प्रकाश के बिना कभी भी पदार्थ ज्ञान नहीं होता।

❀

❀

❀

❀

लक्ष्मी दोला के समान चंचल है, विषयरस परिणाम में नीरस हैं, शरीर विपत्ति का घर है, विपुल सम्पत्ति बड़ी मृत्यु है, लोक बड़े शोकसे भरपूर हैं और स्त्रियाँ नित्य बहुत दुःख देनेवाली हैं तो भी अज्ञानी पुरुष इस संसार के घोर मार्ग में ही लबलीन रहते हैं।

❀

❀

❀

❀

राग द्वेषाग्नि से भरपूर संसार स्वप्न तुल्य है, निद्रा में जैसे स्वप्न सत्य के समान मालूम होता है, पर जाग्रत में मिथ्या हो जाता है, वैसे ही अज्ञानावस्था में संसार सत्य भासता है तथा प्रबोध होते ही असत्य तथा मिथ्या हो जाता है।

धारावाहिक

मानस सरस्वती

(गतांक से आगे)

श्री वेदान्ती जी

दो०-नित पूजत प्रभु पाँवरी,
प्रीति न हृदय समाति ।

मागि मागि आयसु करत,
राज काज बहु भाँति ॥

भरतहि होइ न राजमद,
विधि हरिहर पद पाइ ।

कवहु कि काँजी सीकरनि,
चीर सिन्धु विनसाइ ॥

जैसे मालिकके बागकी रक्षा-सेवा माली ममत्व शून्य होकर करता है उसी प्रकार भरतजी ने भगवान् रामके राज्यकी मालीकी भाँति ममत्व शून्य होकर रक्षा की। माली बागको मालिककी सम्पत्ति मानता है परन्तु अपने शरीर मन इन्द्रियोंको मालिकका नहीं मानता उनका स्वामी अपने ही को जानता है तथा बागकी रक्षा सकाम करता है। अतः भरतजीमें सेवाभाव मालीसे अत्यन्त उच्चकोटिका है क्योंकि भरतने भगवान्के राज्यकी रक्षा निष्काम भावसे की और फलमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, लोक यश या भगवान् रामकी कृपा तकके इच्छुक

वे नहीं थे। यथा :-

दो०-अर्थ न धर्म न काम रुचि,
गति न चहउँ निरवान ।

जनम जनम रति राम पद,
यह वरदान न आन ॥

जानहु राम कुटिल कर मोही ।

लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही ।

सीताराम चरन रति मोरे ।

अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे ।

जलद जनम भरि सुरति विसारउ ।

जाँचत जलु पविपाहन डारउ ।

चातक रटनि घटे घटिजाई ।

बढ़े प्रीति सब भाँति भलाई ।

कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे ।

तिमि प्रियतमपद नेम निवाहे ।

करइ स्वामी हित सेवक सोई ।

दूषन कोटि देइ किन कोई ।

सहज सनेह स्वामि सेवकाई ।

स्वारथ छलफल चारि बिहाई ।

आगम निगम प्रसिद्धि पुराना ।

सेवा धरम कठिन जगजाना ।

पुलक गात हिय सिय रघुवीरु ।
जीह नाम जप लोचन नीरु ।
लखन राम सिय कानन बसहीं ।
भरत भवनबसि तपतनु कसहीं ।
दोउ दिसिसमुझिकहत सब लोगू ।
सब विधिभरत सराहन जोगू ।

भरतजी मालीकी भाँति सकामी भी नहीं है तथा जैसे माली अपने शरीर मन इन्द्रियोंपर अभिमान रखता है केवल बागको मालिकका मानता है उस प्रकारसे भरतजी केवल अयोध्या के राज्य ही को भगवान रामका नहीं मानते थे बल्कि अपने शरीर मन इन्द्रियों व अपने को भी भगवानका ही मानते थे । जैसे सूर्यका प्रतिविम्ब भी विम्ब सूर्यका होता है और जिस जलमें प्रतिविम्ब निवास करता है वह भी सूर्य से उत्पन्न होनेसे सूर्यका होता है उसी प्रकार समस्त जीव सच्चिदानन्द परमात्मा रामके प्रतिविम्ब होनेसे विम्ब स्वरूप परमात्मा रामके ही हैं और स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर भी रज्जु सर्पवत सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द रामके ही आश्रित होनेसे रामके ही हैं । अतः सब जीवों को भरतजीके समान ईश्वर अर्पण बुद्धिसे निष्काम निरभिमान होकर सारे कार्य करना चाहिये । कामना, अभिमान और ममत्व शून्य हृदयोंको ही वाल्मीकीजीने भगवान रामको रहने योग्य घर बतलाये हैं । यथा :—

जिनके श्रवण समुद्र समाना ।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ।
भरहि निरन्तर होहि न पूरे ।
तिन्हके हिय तुम्ह कहूँ गृह रूरे ।

लोचन चातक जिन्हकरि राखे ।
रहहि दरस जलधर अभिलाषे ।
निदरहि सरित सिंधु सर भारी ।
रूपविन्दु लहि होहि सुखारी ।
तिन्हके हृदयसदन सुखदायक ।
बसहु बंधुसिय सह रघुनायक ।

दो०—जसु तुम्हार मानस विमल,
हंसिनि जीहा जासु ।
मुक्ताफल गुनगन चुनइ,
राम बसहु हियतासु ।
प्रभुप्रसाद सुचिसुभग सुवासा ।
सादर जासु लहइ नित वासा ।
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं ।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ।
सीस नवहि सुर गुरु द्विज देखी ।
प्रीति सहित करिविनय विसेषी ।
कर नित करहि राम पद पूजा ।
राम भरोस हृदय नहि दूजा ।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं ।
राम बसहु तिन्हके मन माहीं ।
मंत्र राज नित जपहि तुम्हारा ।
पूजहि तुम्हहि सहित परिवारा ।
तरपन होम करहि विधि नाना ।
विप्र जेवाइ देहि बहु दाना ।
तुम्हते अधिक गुरुहि जिय जानी ।
सकल भाति सेवहि सनमानी ।

दो०—सब कर मागहि एक फल,
राम चरन रति होउ ।
तिन्हके मन मंदिर बसहु,
सिय रघुनंदन दोउ ॥

काम क्रोध मद मान न मोहा ।
लोभ न द्रोह न राग न द्रोहा ।
जिन्हके कपट दंभ नहि माया ।
तिन्हके हृदय बसहु रघुराया ।
सबके प्रिय सबके हितकारी ।
दुखसुख सरिस प्रसंशा गारी ।
कहहि सत्य प्रिय वचन विचारी ।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ।
तुमहि छाड़ि गति दूसरि नाही ।
राम बसहु तिनके मनमाहीं ।
जननी सम जानहि परनारी ।
धन पराव विष ते विष भारी ।
जे हरषहि परसंपति देखी ।
दुखित होहि पर विपति विशेषी ।
जिन्हहि राम तुम प्रान पिआरे ।
तिन्हके मन सुभसदन तुम्हारे ।

दो० स्वामी सखा पितु मातु गुरु,
जिनके सब तुम्ह तात ।
मन मन्दिर तिन्हके बसहु,
सीय सहित दोउ आत ॥

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं ।
विप्र धेनु हित संकट सहहीं ।
नीति निष्ठुन जिन्हकइजगलीका ।
घर तुम्हार तिन्हकर मनुनीका ।
गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा ।
जेहि सबभाँति तुम्हार भरोषा ।
राम भरत प्रिय लागहि जेही ।
तेहि उर बसहु सहित वैदेही ।

जाति पाति धन धरम बड़ाइ ।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई ।
सब तजि तुम्हरि रहइ उर लाई ।
तेहिके हृदय रहहु रघुराई ।
सरग नरक अपवरग समाना ।
जहँ तहँ देख धरे धनु बाना ।
करम बचन मन राउर चेरा ।
राम करहु तेहिके उर डेरा ।

दो० जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु,
तुम्ह सन सहज सनेह ।
बसहु निरन्तर तासु मन,
सो राउर निज गेह ॥
कह मुनिसुनहु भानुकुल नायक ।
आश्रम कहउ समल सुखदायक ।
चित्रकूट गिरि करहु निवास ।
तहँ तुम्हार सब भाँति सुपास ।

दो० चित्रकूट महिमा अमित,
कही महामुनि गाइ ।
आइ नहाय सरिता वर,
सिय समेत दोउ भाइ ॥

रघुपति चित्रकूट बसि नाना ।
चरित किए श्रुति सुधा समाना ।
सुरपति सुत धरि वायस वेषा ।
सठ चाहत रघुपति बल देखा ।
सीता चरन चौंच हति भागा ।
मूढ़ मन्दमति कारन कागा ।
चला रुधिर रघुनायक जाना ।
सीक धनुष सायक संधाना ।

प्रेरित मंत्र ब्रह्म सर धावा ।
 चला भागि वायस भय पावा ।
 ब्रह्म धाम शिवपुर सब लोका ।
 फिराभ्रमितव्याकुलभय शोका ।
 सब जग ताहि अनलहुते ताता ।
 जो रघुवीर विमुख सुन आता ।
 भा निरास उपजी मन त्रासा ।
 जथा चक्र भय रिषि दुर्वासा ।
 आतुर समय गहेसि पद जाई ।
 त्राहि त्राहि दयाल रघुराई ।
 निजकृत कर्म जनित अघपायउँ ।
 अब प्रभुपाहिसरन तकि आयउ ।
 सुनि कृपाल अति आरत वानी ।
 एक नयन करि तज्जा भवानी ।
 तात्पर्य यह है कि गुरुजनोंकी परीक्षा
 लेनेका साहस नहीं करना चाहिए । सन्त, भग-
 वन्तकी परीक्षा लेनेवाले जयन्तकी भाँति एक

नेत्रवाले रह जाते अर्थात् परमार्थ दृष्टिसे रहित
 केवल व्यावहारिक दृष्टि वाले रह जाते हैं ।
 हे उमा :—

बहुरि राम अस मन अनुमाना ।
 होइहि भीर सबहि मोहि जाना ।
 सकल मुनिन सन विदा कराई ।
 सीता सहित चले द्वौ भाई ।
 अत्रिके आश्रम जव प्रभु गयऊ ।
 सुनत महामुनि हरषित भयऊ ।
 करि पूजा कहि वचन सुहाए ।
 दिए मूलफल प्रभु मन भाए ।
 अनुसुइयाके पद गहि सीता ।
 मिली बहोरि सुशील विनीता ।
 रिषि पतनी मन सुख अधिकाई ।
 आसिष देइ निकट बैठाई ।
 दिव्य वसन भूषन पहिराए ।
 जे नित नूतन अमल सुहाए ।

(कमशः)

अटपट बानी

(सं०—श्री चन्द्रिका प्रसादजी)

हम चित्त लगायके वेद पढ़े,
 बकवाद से कान किए बहिरे ।
 हम प्रेम के नेम से ताप तपे,
 हम जाप जपे जल में गहिरे ।
 हम ढूढ़त ढूढ़त ढूढ़ थके,
 हम ढूढ़ फिरे अहिरे बहिरे
 हमसे अस हेतु को कौन कहे,
 हम ही ठहरे हम ही ठहरे ।

अटपट है मन की गति खटपट लखे न कोय ।
 जो मनका खटपट लखे तो भटपट दर्शन होय ॥
 बनिया ठग दो भक्त हैं बनियाँ बनिज प्रवीण ।
 काचों दे साचों लियो, ठगवा गजबै कीन ॥

देश पर सन्तों का उपकार

श्री राजमुनि

०

घटना सोलहवीं सदी की है। उस समय उदासीनाचार्य श्री चन्द्र भगवान काश्मीर में थे। समाधि द्वारा सिन्धु के हिन्दुओं की दुर्दशा का जब पता चला तब भगवान इसे सहन न कर सके। अतः शीघ्र ही काश्मीर से सिन्धु की ओर चल पड़े।

भगवान जब ठठ्ठे से गुजरात की ओर चले गये थे तो पीछे से सिन्धु के पीरों को अपने कपट-जाल फैलाने का सुअवसर मिल गया। थोड़े ही दिनों में उनकी कृत्रिम शक्तियों का प्रभाव जनता पर जम गया। उनकी प्रसिद्धि यहाँ तक बढ़ गई कि सम्राट अकबर भी उनके दर्शनार्थ सिन्धु पहुँचा। सिन्धु में पीरों के षड्यन्त्रों के इलावा हिन्दुओं पर एक और आफत का पहाड़ टूटने वाला था। श्रृद्धालु मुस्लिम जगत का यह विश्वास था कि जहाँ पर ७० शक्ति शाली पीर हो चुके वहाँ की यात्रा का पुण्य मक्का के समान होता है। नगर ठठ्ठामें ऐसे ६९ पीर हो चुके थे। त्रुटि केवल एक पीर की थी। १६१४ वि० में मिरजा ईसातर खाँ का बेटा मिरजा बाकी ठठ्ठा का शासक बना। यह बड़ा दुराचारी, प्रकृति का कठोर और ईस्लाम का कट्टर पक्षपाती था। इसने ठठ्ठे का शासन हाथ में लेते ही हिन्दुओं को और अधिक तङ्ग करना आरम्भ किया। उन्हीं दिनों में उसने

अपनी कन्या का विवाह देहली सम्राट अकबर से कर दिया, जब वह लोगों के कहने सुनने से पीरों के दर्शनार्थ सिन्धु में आया था। सम्राट से सम्बन्ध होते ही मिरजा को हिन्दुओं पर और भी मनमाने अत्याचार करने का अवसर मिल गया। कोई हिन्दु देव पूजा न कर सकता था और नहीं कोई अपने मस्तक पर तिलक ही लगा सकता था। देवालयों में शंखादिकों का बजाना तो दूर रहा किसी को मुख से राम नामादि उच्चारण करने का अधिकार न था। कृत्रिम अभियोगों द्वारा सहस्रों हिन्दु पकड़ लिए जाते और कितने तो धर्म से पतित किये जाते और कुछ तलवार के घाट उतार दिये जाते। ऐसी भयंकर स्थिति में भगवान ने सिन्धु में जाकर हिन्दु धर्म की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। काश्मीर से भगवान नगर ठठ्ठा पहुँचे। नगर में वहीं जाकर आसन लगा दिया जहाँ पर वे पहले ठहरे थे। ठठ्ठे की जनता भगवान का शुभागमन सुनकर प्रफुल्लित हो गई। लोग दर्शनार्थ आने लगे और अपनी २ करुण कहानियाँ रो-रोकर भगवान को सुनाने लगे।

भगवान ने उन्हें धैर्य देकर उपदेश देना आरम्भ किया, “भक्तगण ! धर्म के नियमों के पालन में त्रुटि मत आने दो। यदि इसमें तुम्हारे प्राण जाते हैं तो जाने दो। प्राणों की अपेक्षा

धर्म अधिक कीमती और स्थायी वस्तु है। यदि प्राणोंके डरसे धर्म खोकर जीते हो तो तुम्हारा जीना ही ब्रूया है। क्या तुम्हें यह विश्वास है कि तुम सदा जीते रहोगे। यदि नहीं, तो क्यों राजडरसे धर्मका पालन नहीं कर रहे हो। मृत्यु प्रत्येकके लिए अवश्यंभावी है। फिर क्यों न हम धर्मकी बलिबेदी पर सहर्ष खड़े होकर इसका प्रसन्नवदनसे आह्वान करें। हमारे धर्ममें तो मरना एक रूपान्तर है। किसी रोगसे पीड़ित होकर, डरते-डरते मृत्युका शिकार होना कायर मनुष्यका काम है। धर्म-वीर अपने प्राणर्पणसे धर्मकी रक्षामें अपना सर्वस्व लुटा देते हैं। अतः जाओ और अपने २ मन्दिरोंमें देवपूजन आरम्भ करो।” भगवानके इस ओजस्वी भाषणसे लोगोंके मनोमें उत्साह का सञ्चार हो गया। सबके सब अपने अपने मन्दिरोंमें गये और देवपूजन करने लगे। वे हिन्दु जो स्थानीय शासकके भयसे अपने देव पूजनादि धार्मिक कर्तव्योंको मृत्युके भयसे वर्षों से बन्द किये बैठे थे, आज वे ही भगवानके ओजस्वी भाषणसे प्रभावित होकर मृत्युका भय भुलाकर फिर अपने धर्मका कार्य बड़े उत्साहसे करने लगे। देवालयोंमें फिर पूजन होने लगा और शंखध्वनिसे आकाश गूञ्ज गया।

यह सुनते ही नगरके मुसलमानोंको आग सो लग गई। वे गुस्सेसे पागल हो गये और मिरजा बाकीके दरबारमें हिन्दुओंके विरुद्ध वे यह शिकायत लेकर गये। दरबारके कर्मचारी भी हिन्दुओंके प्रत्येक धार्मिक कामसे चिढ़ते

थे। अतः राजाज्ञासे नगरके प्रधान २ हिन्दु दरबारमें बुलाये गये। मिरजाबाकीने उनसे इस अपराधका कारण पूछा। हिन्दुओंने यह कहा कि हमारे धर्मके अनुसार हमें अपने गुरुओं की आज्ञाका पालन करना पड़ता है। आजकल हमारे धर्मगुरु एक चतुर्थश्रमी महात्मा यहाँ पधारे हुए हैं। उन्होंने हमें ऐसा करनेको कहा है। हमारे लिए उनकी आज्ञाका पालन करना आवश्यक है। मिरजाबाकीने कहा, क्यों एक फकीरके कहनेसे तुम अपनी जानें खोते हो। जिस फकीरकी आज्ञासे तुम ऐसा कर रहे हो वह तो पागल है। पहले की तरह अबकी बार मिरजाको हिन्दुओंको शीघ्र ही दण्डित करने का साहस न हुआ। यह भगवानको दिव्य शक्तियोंका ही प्रभाव था। अतः हिन्दु लोग दरबारसे अपने घरोंको सहर्ष लौट आए।

दरबारके तमाम प्रश्नोत्तर भगवानके पास भी पहुँच गये। भगवानने कहा, अच्छा अभी पता चल जायगा कि पागल कौन है। भगवानके मुखसे ये शब्द निकलते ही मिरजा पागल हो गया। उसने अपनी कटारीसे अपने पापमय जीवनका अन्त स्वयमेव कर लिया। उक्त घटना १६४२ वि० की है। इस प्रकार सिन्धुकी दोन जनता ठठ्ठाके पापी शासकके अत्याचारसे मुक्त हुई। भगवानके सदुपदेशोंसे जनतामें पीरोंका प्रभाव भी कम हो गया। भगवानके द्वारा चलाये हुए धर्मोपदेशके कार्यक्रमसे सिन्धुके हिन्दु लोगोंका धर्म सुरक्षित रहा।

भगवान का आश्रय

(लेखक—जयकान्त भा)

भगवदाश्रयसे रिक्त निग्रहकरणके जितने भी साधन हों उन्हें जुटा लेने पर भी हमारे एक भी पापका नाश नहीं हो सकता किन्तु सम्पूर्ण हृदय योगके द्वारा भगवानको आत्म समर्पण करने पर तो हमारे पापोंका स्वतः मार्जन हो जाता है। उसके लिये चिन्ताकी कहीं गुंजाइश नहीं रह जाती। ऐसा लगता है मानों भगवानने बड़ेसे बड़े पापियों पर महानसे महान अनुग्रह करके अपनी दयाका एक अनुपम कीर्तिस्तम्भ खड़ा कर दिया है। अतः हमारा परम कर्तव्य है कि भगवदाश्रय लेकर हम सर्व-भावेण उन्हींमें रमण करें। हमारे सब कार्य भगवत्प्रीत्यर्थ हों और इससे इतर विचारोंका मन में कहीं कोई स्थान न रहे। यही भगवत्पूजनकी सर्वोत्तम सामग्री है और इसीकी अनु-कम्पासे हम पर उनकी महती कृपा वरसती है। जो व्यक्ति भगवानके प्रति पूर्ण समर्पण कर देता है और उनके लिये प्रत्येक कष्ट सहन करने को कटिबद्ध हो जाता है भगवान न तो उसे कभी धोखा दे सकते हैं और न बहुत समय तक उसे यन्त्रणाका ही भोग कराते हैं। भगव-च्छरणकी प्राप्तिके लिये हमें सब प्रकारसे भगवानका होकर सम्पूर्ण लौकिक वस्तुओंका परित्याग कर देना होगा। हमें ऐसा अनुभव

करना होगा कि मेरे और भगवानके सिवा संसारमें और कोई दूसरा है ही नहीं। जब हम भक्ति भावसे अपनेको भगवानकी पवित्र सन्निधिमें रखते हैं, उन्हींको सदा अपने सम्मुख समझते हैं तो हम कभी कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकते जिससे उनका अपराध बने या वे अप्रसन्न हों। ऐसे समय हमारे भीतर एक अलौकिक पवित्र स्वतन्त्रता जागृत होती है और भगवानके साथ हमारा ऐसा मेल हो जाता है जिससे हम निःसंकोच उनसे जिस समय और जैसे अनुग्रहकी आवश्यकता होती है बिना किसी असफलताके भयसे माँग सकते हैं और भगवत्सान्निध्यकी निरन्तर अनुभूति हमारी स्वाभाविक वस्तु बन जाती है।

भगवान तो सर्वत्र हैं ही, जहाँ जीव एक बार सभी प्रकारके छल कपटका परित्याग कर उनकी शरणमें गया कि भगवानने उसे अप-नाया। जब भगवान अपना लेते हैं तब “मेरा क्या कर्तव्य है?” “मेरे पास कौन-कौनसी वस्तुएँ नहीं हैं?” “अमुक साधना कैसेकी जायगी?” आदि चिन्ता करनी व्यर्थ होती है। तब तो फिर जो कुछ होता है सब भगवानकी इच्छासे ही होता है। योग क्षेम बाहक प्रभु उसका सारा प्रबन्ध कर देते हैं। उसके ज्ञान-

ध्यानकी प्राप्ति, उसके दुर्गुणोंका नाश सब कुछ वे अपने कार्यकी भाँति सम्पादन करते हैं। फिर उसके सामने जितनी भी घटनायें उपस्थित होती हैं, जो भी वस्तुएँ उपस्थित होती हैं, सभी भगवानके इच्छानुसार ही या यों कहिये कि उनकी ही लायी हुई वे सामग्रियाँ होती हैं। फलतः उससे शरणापन्न जीवका भगवद्भजनमें अधिकाधिक प्रेम हो जाता है। यह तो कभी भी न सोचना चाहिये कि भगवान उसका ध्यान नहीं करते। भला जब उनसा सर्वशक्तिमान् स्वामी ही अपने आश्रितोंका स्मरण न रखेगा तो विश्वमें ऐसा दूसरा कौन है जो किसीका कुछ ध्यान रखेगा? असलमें तो बात यह है कि भगवानका अपने आश्रितों पर ही सबसे अधिक ध्यान रहता है :—

सबके प्रिय सेवक यह रीती।

मोरे अधिक दास पर प्रीती ॥

भगवानतो कछुएके अंडेकी तरह अपने आश्रितोंकी खबर लेते रहते हैं। हजारों बार उनके पास जाकर उनकी देख-रेख करते हैं— नहीं नहीं, क्षण-क्षण प्रत्युत सर्वदा उनकीही रखवाली करते हैं—

तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िये कमठ-

अंडकी नाई।

भला अब इससे बढ़कर लाभ क्या चाहिए? यही कारण है कि भगवत्कृपाका स्वाद जिन्हें एकबार मिल गया है वे लाख लालच दिखा-लाये जाने परभी अपने मार्गसे टससे मस नहीं होते। न तो उन्हें किसी वस्तुकी चिन्ता होती

है और न स्वप्नमें भी भय क्योंकि सर्व शक्तिमान् स्वामी सदैव साथ रहते हैं। बस, एकमात्र जहाँ शरणागति स्वीकार हुई कि सारा भगड़ाही समाप्त।

पर भगवच्छरणागति इतनी सस्ती नहीं है। अन्यथा संसारमें अशान्ति एवं आपत्तिका नाम ही न होता। सच पूछा जाय तो जिसका महान भारयोदय होने को होता है, जिसके अनन्त जन्मोंके पुण्योंके फल उदय होते हैं उसे ही भगवानकी शरणमें जानेकी सूर्यती है। विभीषणजी जब भगवानकी शरणमें जाते हैं तब एकही बार प्रणाम कर देने मात्रसे भगवान राम परम प्रसन्न हो जाते हैं और विभीषणजी के सारे पाप-ताप जलकर खाक हो जाते हैं। पर यह बात केवल विभीषणजी के लिए ही नहीं थी। भगवानकी शरणमें जानेमें सभीकी भलाई है। धनी हो या गरीब, बड़ा हो या छोटा, पंडित हो या मूर्ख, गुण-हीन, महा दरिद्र ही क्यों न हो, माँगने पर जिसे जल भी न मिल सके ऐसे भी दीन-हीन भगवानकी शरणमें जाकर खूब मजेसे निभते हैं। ऐसे लोगोंके सारे पाप, छल-छिद्रादि दोष और कष्ट सभी समूल नष्ट हो जाते हैं।

गये सरन सबको भलो।

धनी-गरीब, बड़ो-छोटो,

बुध-मूढ़, हीन-बल, अति तलो ॥

पंगु-अन्ध, निर्गुनी-निसंबल,

जो न लहै जाचे जलो।

सो निवहो नीके, जो जनमि

जग राम-राजमार्ग चलो ॥

(गीतावली-सुन्दर कान्ड)

यह संसार केवल दुःखालय है। हम सबका जीवन आपत्ति-विपत्तिसे घिरा है। इन यन्त्रणाओंसे छूटनेका एकमात्र उपाय भगवान का आश्रय ग्रहण करना ही है। अतएव प्रभुकी अभय शरण प्राप्त करनेके लिए हम सदा उनसे प्रार्थना करें। सच्ची प्रार्थनातो तब होती है जब हम भगवानको अपने सम्मुख समझें और ऐसा तभी हो सकता है जब हम उनके चिन्तनमें अधिकसे अधिक निरत रहें। भगवच्चिन्तन करनेकी स्वाभाविक अभिरुचि हमारे पवित्र आचरण और अलोलुप मन द्वाराही सम्भव है। संसारमें यदि कोई वस्तु प्रेम करने योग्य है तो वे हैं एक भगवान और उनसे प्रेम करनेके पहले उनका परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। यह

परिचय तभी प्राप्त होगा जब हम उनके चिन्तन में अधिकसे अधिक निमग्न रहेंगे। प्रेम होने पर तो चिन्तन अपने आप होगा और हमारा हृदय अपने प्रेमास्पद प्रभुमें सदा निमग्न रहेगा-उन्हे क्षण भरके लिए भी न भूलेगा। सचमुच वे लोग भाग्यशाली हैं जो दुखमें भी भगवान को अपने पास समझते हैं। ऐसे लोग नाना प्रकारके कष्टोंको भगवानकी ओरसे आया हुआ मंगल-विधान मानकर यह समझते हैं कि यह सब तो अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए प्रभुका रचा हुआ अनूठा ढंग है। वे भयानक रोगमें भी प्रायः अत्यन्त सुख एवं आश्वास्तताका अनुभव करते हैं। अतः सोते जागते कार्य करते सदैव हमें भगवानका आश्रय लेकरही अपना जीवन सफल बनाना चाहिए। यही सफलताकी कुञ्जी है।

जागो जागो शिव भगवान !

जागो जागो शिव भगवान !

आज तुम्हारे धवल धाम पर,

प्रबल शत्रु बढ़ता आता है,

शक्ति हीन वह तुम्हें समझ कर,

अपनी माया दिखलाता है।

बर्बर बनकर हिन्द देश का करता है अपमान।

जैसे तुमने दनुज नाश हित,

ताण्डव नृत्य किया था,

देवों के उपकार हेतु ही,

प्रभुदित गरल पिया था,

वैसे ही वह गरल वमन कर हर लो शत्रु प्रधान।

बहुत सो चुके अब सचेत हो,

अरि छल दूर करो तो,

निर्बल जन के रग-रग में तुम,

साहस भाव भरो तो,

आत्मशक्ति पाने पर ही जागेगा देश महान।

मानव मन में राष्ट्र प्रेम का,

अगणित दीप जला दो,

एक बार अपने त्रिशूल से,

ज्वाला विशिष चला दो,

हृदय हीन इस दारुण रिपुका करलो शोणित पान।

—ठाकुर दत्त त्रिपाठी

परमात्म-ज्ञान का महत्व

लेखक श्री आत्मानन्द मुनि

तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बु विपिने यथा ।
न गर्जति महाशक्त्यावद्वेदान्त केसरी ॥
अर्थात् जिस प्रकार बनमें शृगाल उसी
समय तक चिल्लाते रहते हैं, जबतक केसरी-
सिंहकी गर्जना नहीं होती। और उसकी गर्जना
होनेपर सभी दुबक जाते हैं, इसी प्रकार सभी
शास्त्र उसी समयतक अपना अपना अलाप
करते रहते हैं, जबतक महाशक्ति वेदान्त केसरी
नहीं गर्जता।

ईश्वरीय ज्ञानका नाम वेद है जो अनादि
है। उस अनादि ज्ञानके प्रकाशक होनेसे वेद
भी अनादि कहे गये हैं। जो कर्म उपासना
और ज्ञानके भेदसे त्रिकाण्डात्मक हैं।
इधर जीवके हृदयमें मल, विक्षेप, और
आवरण तीनही दोष हैं। परमानन्द जीवका
निज स्वरूप होते हुए भी और नित्य प्राप्त होते
हुये भी केवल इन तीन दोषोंके कारण जीव
का वह धराया जैसा और अप्राप्त सा भान हो
रहा है। कहना चाहिये कि केवल इन तीन
दोषोंकी निवृत्तिके लियेही भगवान्का विश्वास
रूप ये त्रिकाण्डात्मक वेद अवतीर्ण हुये हैं।
उनमेंसे भिन्न-भिन्न तीनों काण्ड भिन्न-भिन्न
तीनों दोषोंके निवर्तक सिद्ध होते हैं। अर्थात्
प्रथम निष्काम कर्मसे मल दोषकी निवृत्ति,

तत्पश्चात् उपासनासे विक्षेप दोषकी निवृत्ति
और तदुपरान्त अर्थात् मलविक्षेपसे छुटकारा
पाकरही ज्ञानसे आवरण दोषकी निवृत्ति
सम्भव है।

इसीलिये ज्ञान वेदका अन्तिम भाग होनेसे
वेदान्त नामसे अभिहित किया जाता है और
जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त कराके साक्षात्
परमानन्दको प्राप्त करा देना यही इसका
मुख्य प्रयोजन है। मोक्ष प्राप्तिके लिये एक
मात्र यही सोपानक्रम पकड़कर चलना होगा,
अन्य कोई सोपान नहीं बनाया जा सकता।
इसीलिये भगवान् व्यास जीने अपने वेदान्त
दर्शनके आरम्भमें पहला सूत्र 'अथातो ब्रह्म
जिज्ञासा' की ही रचना की है। इस सूत्रका
भाष्य करते हुये भगवान् भाष्यकारने युक्ति
पूर्वक इसका यही अर्थ स्पष्ट किया है कि
प्रथम मल-विक्षेप दोषसे विनिर्मुक्त, तदनन्तर
विवेक वैराग्यादि साधन चतुष्टय सम्पन्न
अधिकारी हो ब्रह्म जिज्ञासा का पात्र हो
सकता है।

संसार-बन्धन का मूल एकमात्र परिच्छिन्न
अहंकार (Little Self) ही है और सत्स्वरूपी
परमात्माके आश्रय अपने निज स्वरूपके अज्ञान
से यह अकारण ही स्फुरण आया है।

सोमित-अहंके दृढ़ मूल होने पर देहमें आत्म बुद्धिका पसारा हो जाता है, इस मिथ्या-बुद्धिके सुदृढ़ हो जाने पर भेद रूप संसार निकल पड़ता है, और तब देह सम्बन्धियोंमें ममता पसर कर इस अहन्ताको अधिक सुदृढ़ बना देती है। इस प्रकार परस्पर अहन्ता-ममता परिपक्व होती है। इनकी पूर्तिके लिये स्वार्थ का प्रसार हो जाता है और इसके फलस्वरूप जन्म मरण का प्रवाह चल पड़ता है। यही संसार बन्धन है और इससे छुटकारा पानाही मुक्ति है। इस प्रकार यद्यपि परिच्छिन्न-अहंकार से ही सम्पूर्ण संसार-बन्धन निकलता है, तथापि यदि हम पहले हाथ ही इसको काटने जायें तो काट न सकेंगे, किन्तु इसको काटनेके लिये तो विपरीत क्रम ही पकड़ना होगा। अर्थात् प्रथम निष्काम-कर्मके द्वारा स्वार्थ, तत्पश्चात् उपासना द्वारा ममता और तदुपरान्त वेदान्त द्वारा अहन्ता काटनी होगी।

जिस प्रकार सिंहनी का दूध धारण करने के लिये सुवर्ण का ही पात्र चाहिये यदि वह किसी अन्य पात्रमें धारण किया गया तो पात्र के फट जाने की विशेष संभावना रहती है। इसी प्रकार वेदान्त सिंहनी का दूध है, इसको धारण करने के लिये विवेक वैराग्यादि साधन सम्पन्न बुद्धि ही योग्य पात्र हो सकती है, वही इसको ठीक ठीक पचा सकेगी और इससे बल प्राप्त कर सकेगी। इसके विपरीत यदि यह वस्त्रीची कोटिके पात्रमें धारण किया गया तो वह इसे पचा न सकेगा और मानसिक अजीर्ण

(Mental Dispepsia) की सम्भावना हो जायेगी। जिसके फलस्वरूप इधर तो वेदान्त श्रवणसे आगे मननमें प्रवृत्ति असम्भव हो जायगी और उधर निष्काम कर्म उपासनमें भी रुचि न रहेगी। यदि इससे भी नीचे सकाम बुद्धि रूपी पात्रमें यह दूध भरा गया तो पात्रके फटनेकी भी बहुत कुछ सम्भावना है, जिसके फलस्वरूप देहात्मवादी बनकर ही निकलना होगा। सारांश कहना चाहिये कि वेदान्त संखिया है। जिस प्रकार संखिया त्रिदोष वाले सन्निपातके रोगी पर तो अमृत रूप और निरोगीके लिये विष रूप सिद्ध होता है, इसी प्रकार जन्म मरणादि संसार-बन्धनका मूल एकमात्र परिच्छिन्न अहंकार ही है यही सत्य-स्वरूप परमात्माके आश्चर्य अहंत्वमादि संसारके रूपमें फैलता है और इसको दग्ध करनाही मोक्ष है, तथा ममता-स्वार्थ रूप इसके अंगोंको काटकर ही इसको भस्मीभूत किया जा सकता है। यद्यपि ये अंग निष्काम-कर्म और उपासना द्वारा ही काटे जा सकते हैं, ज्ञान द्वारा नहीं, तथापि कर्म और उपासना इस परिच्छिन्न अहंकारको किसी प्रकार काटनेमें समर्थ नहीं हैं, क्योंकि ये परिच्छिन्न अहंकारके परिणाम हैं, अतः ये अपने परिणामीके बाधक किसी प्रकार नहीं हो सकते। इसको काटनेके लिये तो एकमात्र वेदान्त विद्याही साक्षात् रामबाण है। क्योंकि यह अहंकार किसी आरम्भ-परिणामसे उत्पन्न नहीं हुआ केवल अपने अधिष्ठानके अज्ञानसे अकारण ही स्फुरित आया है, और

उसके ज्ञान ही से निवृत्त हो सकता है। इसकी निवृत्तिके लिये संसारमें वेदान्तके सिवा अन्य कोई साधन न हुआ है न होगा। संसारमें जितने भी साधन हैं उन्हें तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है (१) कर्म प्रधान (२) भाव प्रधान (३) ज्ञान प्रधान। इसमें योग-यज्ञादि कर्म प्रधान और निष्काम कर्म-उपासनादि भाव प्रधान हो सकते हैं। अष्टांग योग भी कर्म प्रधान हो हो सकता है, क्योंकि उसमें भी प्राण निरोधादि क्रियाओंके द्वारा इस अहंकारको केवल निश्चेष्ट ही किया जाता है, इसलिये उसमें भावकी भी कोई प्रधानता नहीं रहती, ज्ञानकी प्रधानता तो कहां? इस योगकी सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात आदि जो क्रियात्मक समाधियाँ हैं वे सब इस अहंकारकी अवस्था विशेष ही हो सकती हैं। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि उस अवस्थासे जागकर उस अवस्था की स्मृति होती है और स्मृतिका विषय जो पदार्थ होता है वह सविशेष ही हो सकता है निर्विशेष ब्रह्म नहीं हो सकता। इस प्रकार उपर्युक्त त्रिविध साधनोंमें से जितने भी कर्म प्रधान और भावप्रधान साधन हैं, वे सबके सब इस अहंकारके फल परिणाम अथवा अवस्था विशेष ही हो सकते हैं, इसलिये वे कोई भी इसके साक्षात् बाधक नहीं हो सकते। फल अपने मूलका परिणाम अपने परिणामी का कदापि बाधक नहीं हो सकता, यह तो संसारमें प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि एकमात्र वेदान्त विद्या ही इस परिच्छिन्न अहंकारका साक्षात् बाधक होकर मोक्ष

का साक्षात् साधन हो सकती है। इसके सिवा अन्य कोई साधन न हुआ है न होगा इसलिये (१) ऋते ज्ञानान्न मुक्ति :—ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं है (२) ज्ञानादेवेतु कैवल्यम्—केवल ज्ञानसे ही मोक्ष है (३) नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय—मोक्षके लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है—इत्यादि रूपसे वेदने ढिंढोरा पीट दिया है और भगवान् भाष्यकार (श्री स्वामी शंकराचार्यजी) ने भी स्पष्ट रूपसे भुजा उठा कर यही ललकारा है :—

न योगे न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया ।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा ॥

अर्थ—न पातञ्जल योगसे, न प्रकृति पुरुष विवेक रूप सांख्यसे, न कर्मसे और न उपासनासे ही मोक्षकी सिद्धि सम्भव हो सकती है। किन्तु यह तो केवल वेदान्त द्वारा ब्रह्म और आत्माके एकत्व ज्ञानसे ही साध्य है अन्य किसी प्रकार भी नहीं।

वेदान्त दृष्टिसे परमात्मा में जगत् उत्पन्न नहीं हुआ, किन्तु अधिष्ठान रूप परमात्माके आश्रय स्पन्दवत् केवल स्फुरण मात्र ही जगत् है। इस सिद्धान्तके अनुसार सम्पूर्ण दृश्यमान प्रपञ्च देशकाल परिच्छेद है। जो वस्तु देश काल परिच्छेद है वह उत्पत्ति नाश रूप तो स्वाभाविक ही है। फिर देशकाल चाहे कितना भी लम्बा क्यों न हो, जो उत्पत्ति नाशरूप है वह कार्य है, वह कारण नहीं हो सकता। जो कार्य है वह जड़ है और जो जड़ कार्य है वह अपनी स्थितिके लिये अन्य उपादानकी अपेक्षा

रखता है। उसको अपनी स्वतन्त्र स्थिति नहीं रह सकती। जैसे कार्य रूप घट अपनी स्थिति के उपादान रूप मृत्तिकाकी अपेक्षा रखता है।

वेदान्त मतसे कार्यके प्रति दो कारण होते हैं। उनमें एक उपादान कारण और दूसरा निमित्त कारण कहा जाता है। कार्यके स्वरूपमें जिसका प्रवेश हो और जिसके बिना कार्यकी स्थिति न रह सके उसको उपादान कारण कहते हैं तथा कार्योत्पत्तिसे पूर्वकालमें जो कार्यसे तटस्थ होकर रहे और कार्योत्पत्ति के बाद जिसके नाशसे कार्यका नाश न हो वह निमित्त कारण कहलाता है। जैसे मृत्तिका घटका उपादान कारण और कुम्भकार दण्ड चक्रादि घटके निमित्त कारण होते हैं तथा उपादान कारण एक और निमित्त कारण अनेक होते हैं। इस प्रकार जब कि पञ्चभूतादि सम्पूर्ण दृश्यमान प्रपञ्च उत्पत्ति स्वरूप है और कार्य है, अर्थात् अपनी उत्पत्तिसे पहले नहीं है और अपने नाशके पश्चात् भी नहीं रहता तब इसका कोई एक उपादान अवश्य रहना चाहिये, क्योंकि 'नहीं' (अभाव) से तो 'है' (भाव) की उत्पत्ति हो नहीं सकती और यह सम्पूर्ण प्रपञ्च अपनी जातसे 'पट है' 'घट है' इत्यादि रूपसे भाव (है) रूप ही प्रतीत होता है। अभाव रूप नहीं। इसलिये देश काल परिच्छेद शून्य कोई एक परम भाव रूप वस्तु ही सम्पूर्ण प्रपञ्चका उपादान हो सकती है। यदि उसे देश काल परिच्छिन्न मान लें तो देश काल परिच्छेद होनेसे वह स्वयं उत्पत्ति

नाश रूप और कार्य होगी, तब वह इस प्रपञ्च का उपादान न बन सकेगी। क्योंकि यह नियम है कि जो कार्य है वह किसी अन्यका उपादान नहीं हो सकता। कार्यकी जब कि अपनी कोई सत्ता ही नहीं होती और वह स्वतन्त्रताशून्य होता है, तब वह किसी अन्यका उपादान कैसे हो ? जैसे घट जबकि मृत्तिकासे भिन्न अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखता तब वह अन्य घट अथवा शरावादिका उपादान नहीं हो सकता। किन्तु क्या घट और क्या शरावादि सबका उपादान एकमात्र मृत्तिका ही हो सकती है।

यहाँ तक इस विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि इस प्रपञ्चके मूल देशकाल परिच्छेद शून्य अचल कूटस्थ कोई एक वस्तु अवश्य रहनी चाहिये और वह सच्चिदानन्द रूप परमात्मा ही हो सकता है, क्योंकि उससे भिन्न सब असत् जड़ दुःख रूप ही होता है। वही एकमात्र इस सम्पूर्ण प्रपञ्चका उपादान कारण हो सकता है, वही ब्रह्मसे लेकर तृण पर्यन्त सबमें अनुगत होकर है, 'है' रूपसे और सबकी सत्तारूपसे प्रतीत हो रहा है, केवल उसीकी सत्तासे सब सत् प्रतीत हो रहे हैं, और उसके बिना सभी शून्य रूप हैं। जैसे तरंग फैल बुदबुदेके रूपमें सबकी सत्ता होकर एकमात्र जल ही प्रतीत होता है, और जलके बिना वे सब ही शून्य रूप हैं। उससे भिन्न पंचभूतादिको यदि प्रपञ्चका उपादान कहा जाय तो नहीं बन सकता, क्योंकि पंचभूतादि स्वयं उत्पत्ति स्वरूप

होनेसे कार्य हैं और जबकि वे कार्य हैं तो उपयुक्त विचारानुसार स्वसत्ता शून्य होनेसे उपादान नहीं हो सकते। यद्यपि वे इसी प्रकार प्रपंचके निमित्त कारण तो हो सकते। जिस प्रकार मृत्तिका पिण्ड मृत्तिकासे उपजकर और घटादि कार्योंकी पूर्वास्था बन कर घटादि कार्योंकी पूर्वास्था बनकर घटादिकोंका निमित्त कारण बनता है। इसी प्रकार लौकिक दृष्टिके घटादिकोंके प्रति मृत्तिका को और कटकादिकोंके प्रति सुवर्ण को जो उपादान कहा जाता है। वास्तवमें वे निमित्त ही हैं। सारांश यह स्पष्ट हुआ कि सम्पूर्ण प्रपंचका एकमात्र उपादान सच्चिद्रूप वह परमात्मा ही है। उससे भिन्न जो कार्योंके प्रति निमित्त कहें जाते हैं वे भी वास्तवमें कार्य ही हैं।

उपादान कार्यके सम्बन्धमें न्यायमतका कथन है कि उपादान में कार्य एक नई ही वस्तु उत्पन्न होती है और सांख्योंका मत है कि उपादान ही कार्य रूपमें परिणामी होता है। कार्य कोई नई वस्तु नहीं होता। यदि उपादानमें कार्य नई वस्तु होती तो मृत्तिकासे पट और तन्तुसे घट भी उत्पन्न होना चाहिए, परन्तु जिस उपादानमें जो कार्य अनभिव्यक्त रूपसे रहता है उस उपादानसे वही कार्य निकलता है और तन्तुसे पट ही। इस प्रकार सांख्य मतानुसार कार्य उपादानसे भिन्न नई वस्तु नहीं किन्तु अपने उपादानका परिणाम ही है।

वेदान्त केसरी इन दोनों मतोंसे आगे

बढ़कर गर्जता है कि न तो उपादानमें कार्य कोई नई वस्तु ही होती है और न उपादान कार्यरूपमें परिणामी होता है। यदि उपादान में कार्य कोई नई वस्तु होती हो तो उस नई वस्तु को अपना स्वतन्त्र देशकाल निरोध करना चाहिए, क्योंकि स्वतन्त्र देशकालके बिना वह नई वस्तु रहेगी कहाँ। परन्तु उपादान से कार्य रूपमें परिणामी हुआ हो तो कार्यके नाशके पश्चात् उपादान ज्योंका त्यों न रहना चाहिये। जिस प्रकार दूध दहीके रूपमें परिणामी हुआ फिर दूध रूपसे शेष नहीं रहता। परन्तु घट तथा कटक के नाश हो जाने पर भी मृत्तिका तथा सुवर्ण तो ज्योंके त्यों शेष रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि न उपादानमें कार्य कोई नई वस्तु ही होती है और न उपादान कार्यरूपमें परिणामी होता है। वस्तुतः तो कार्य अपने उपादानका विवर्त्त मात्र ही है। अर्थात् कथनमात्र ही है और रज्जु सर्पकी भाँति दृष्टिमात्र ही है। वह अपने उपादानसे भिन्न वस्तुगत कुछ भी नहीं। उपादान त्रिकाल सत्य है अर्थात् कार्यकी उत्पत्तिसे पहिले और कार्यके नाश के पश्चात् तो ज्यों का त्यों है ही और मध्यस्थितिमें भी वह कुछ बनता नहीं है, यदि वह कुछ बनता तो अन्तमें उपादान ज्योंका त्यों न रहता। यद्यपि वह अपनी दृष्टिमें दिखलाई पड़ता है। तथापि अपने उपादानको छोड़ कर स्थिति कालमें भी वह वस्तु रूपमें कुछ पल्ले नहीं पड़ता। अर्थात् सुवर्ण छोड़कर कटकादि और जल छोड़कर तरंगादि एक

रत्ती भर भी कुछ हाथ नहीं लगते। इसीलिये वेदका ढिंढोरा है।

(१) वाचारम्भणं विकारो नामधेयं
मृत्तिकेत्येव सत्यम्।

कार्य नाम मात्र और वाणी मात्र ही है, उपादान मृत्तिका ही सत्य है।

(२) सन्मूलाः सोम्येमा सर्वाः प्रजाः।

हे सौम्य इस सम्पूर्ण संसारका मूल सत्स्वरूप परमात्मा ही है।

(३) एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा
तत्त्वमसि श्वेतकेतो।

हे श्वेतकेतो, यह सम्पूर्ण संसार आत्म स्वरूप ही है, वही सत्य है वही तेरा आत्मा है और वह तू ही है।

यहाँ तक हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उपादानसे भिन्न कार्यकी अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती और वह केवल नाम मात्र ही होता है, यद्यपि उपादान जलसे पृथक रह कर जलमें तरंगादि और उपादान सुवर्णसे पृथक रहकर सुवर्णमें कटकादिके उत्पत्ति नाश अन्य द्रष्टाओंकी दृष्टिमें निश्चय किये जाते हैं, तथापि उपादान जल तो अपनेमें तरंगादिके और उपादान सुवर्ण अपनेमें कटकादिके उत्पत्ति नाशका कुछ गुमान अथवा

कल्पना भी नहीं करते बल्कि अपनी खरी दृष्टिमें जल तरंगादिकोंजो जल रूप और सुवर्ण कटकादिकोंकी सुवर्ण रूप ही ग्रहण करते हैं। ठीक इसी प्रकार अन्य द्रष्टाओंकी दृष्टिमें यद्यपि परम उपादान अधिष्ठान रूप परमात्मामें उनकी दृष्टिमात्र घटपटादि प्रपंचका उत्पत्ति नाश निश्चय किया जाता है। तथापि अधिष्ठानरूप परमात्मा तो सम्पूर्ण प्रपंच और उसके उत्पत्ति नाश रूप विकारको अपनेमें कुछ भी ग्रहण नहीं करता और उन सम्पूर्ण विकारों को अपना वास्तविक स्वरूप ही ग्रहण करता है। उन द्रष्टाओंमें भी जो अपने खरे पुरुषार्थ द्वारा उस परम उपादानसे एकता प्राप्ति कर लेगे ठीक ऐसा ही ग्रहण करेंगे। परम उपादानसे एकता उपयुक्त रीतिसे एकमात्र वेदान्तके सदुपयोग द्वारा प्रथम स्वार्थ एवं ममतासे छूटकर और तदनन्तर विवेक वैराग्यादि साधन सम्पन्न होकर ही हो सकेगी। वेदान्तके दुरुपयोग द्वारा कदापि नहीं। जन्म मरणादि दुःखोंसे छूटने और परमानन्दके पाने का एकमात्र यही उपाय हो सकता है अन्य कुछ भी नहीं।

परमानन्द संदेशका सदस्य बनकर आत्म-पुराण विशेषांक निःशुल्क प्राप्त करें।

कृपण मत बना

श्री प्रभुदास जी ब्रह्मचारी
बृहदारण्यक उपनिषद्में महर्षि याज्ञवल्क्य
गार्गीसे कहते हैं :—

यो वा एतदक्षरं अविदित्वा
अस्माल्लोकात् प्रैति सकृपणः ॥

जो इस अविनाशी [आत्म-तत्त्व] को बिना
जाने इस लोक से जाता है, वह कंजूस है।

यो वा एतदक्षरं गार्गिविदित्वा
अस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः ॥

हे गार्गी, जो इस अमरतत्त्वको जानकर
इस संसारसे विदा होता है, वह ब्राह्मण है।

महर्षि याज्ञवल्क्यने अविनाशी आत्माके
तत्त्वको न जानने वालेको कृपण कहा है।
कृपण उसे ही कहा जाता है, जिसके पास धन
हो किन्तु उसका उपयोग नहीं करता हो। इसी
तरह जो आत्मतत्त्वको नहीं जानता और व्यर्थकी
बातोंमें जीवन व्यतीत कर जीवन-यात्रा समाप्त
करता है, वह अपना जीवन धन निष्फल गवाने
के कारण कृपण है, किन्तु जो अपने जीवनमें
अविनाशी तत्त्वको जान लेता है वह ब्राह्मण
अथवा मानव-श्रेष्ठ है।

इस अविनाशी तत्त्वकी जानकारी कराने
वाला वेदान्त ही है जो मनुष्य मात्रको दुःखसे
छुड़ानेका, सुखका, परम आनन्दका मार्ग दर्शाता
है, मनुष्यको अधियारेसे ज्योतिमें असत्यसे सत्य
में मृत्युसे अमरत्वमें ले जाता है। वेदान्त ही
है, जो संसारकी हिंसक वृत्ति, युद्धकी इच्छा,
लोभकी लालसा, मोहका फंदा, कामका अंधकार,
क्रोधकी अग्निको निवृत्त कर देता है। वेदान्त
ही मनुष्यकी दासवृत्तिको नाशकर स्वामी बनाता
है। मनुष्यको अपनी वास्तविक शक्तिसे परि-
चित्त करा कर गीदड़से शेर बनाता है। वेदान्त
की शिक्षासे ही मानव जान लेता है कि वह

निरे मिट्टीका पुतला, पाँच तत्त्वोंसे बना हुआ
शरीर नहीं; मन, बुद्धि, अन्तःकरण आदि नहीं
किन्तु उन सबको प्रकाशित करनेवाला शक्ति-
दाता है; दुःख-सुखसे भिन्न साक्षी स्वरूप है।
वेदान्त बताता है कि बाहर दूँदूनेसे कभी आनन्द
नहीं मिल सकता; सब शक्तियोंका, परमानन्द
का तू ही केन्द्रीभूत है।

वेदान्तकी यही शिक्षा है कि तुमने अज्ञान
वशात् अपने वास्तविक स्वरूपको भुला दिया
है। शरीरको ही अपना आप मान रखा है।
इन्द्रियोंके सुखमें ही सच्चा आनन्द समझ लिया
है। सत्-चित्-आनन्द स्वयं होकर, सब शक्तियों
का भण्डार होकर अपनेको दुर्बल, अल्प शक्ति
वाला, परिच्छिन्न, अनिष्ट मान रखा है। तब
ही तुम दुःखी बना है। वेदान्त इस वृत्तिको
बदल देता है। वह बताता है कि मनुष्य स्वयं
ही अपने दुःख सुख बन्धन अथवा मोक्षका पैदा
करनेवाला है। वेदान्त माता मदालसाकी तरह
हमें यह लोरी देता है—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि
संसार मायापरिवर्जितोऽसि।
संसार माया स्वप्नंत्यज मोह निद्रां...

तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरञ्जन है; संसारकी
मायासे अलग है। यह संसार स्वप्न है। अतः
मोहकी निद्राका त्याग कर।

वेदान्त कहता है कि “आत्म ज्ञानके सिवा
मुक्ति नहीं। संक्षेपमें वेदान्तकी शिक्षा है कि
कृपणताका त्याग कर जीवनको सार्थक बनाओ।
भगवती श्रुतिके वाक्योंमें वह कहता है—

“उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान् निबोद्धतः।”
(कठो० १. ३. १४)

उठो, जागो और श्रेष्ठजनोंको पाकर तत्त्व
को समझो।

मोह फाँस

०

एक कालमें नारद जी पृथ्वी पर पर्यटन करते हुए बैकुण्ठमें जा निकले। वहाँ पर भगवानको अकेले बैठे हुये देखकर नारद जीने भगवानसे कहा—“महाराज ! आपका बैकुण्ठ तो आजकल खाली पड़ा है, कोई भी पुरुष यहाँ पर नहीं दिखाता है, क्या बैकुण्ठमें भी कोई आनेकी इच्छा नहीं करता है ? यहाँ तो सर्व प्रकारका सुख है किसी प्रकारका भी यहाँ पर दुःख नहीं है फिर क्यों बैकुण्ठ खाली है ?”

भगवानने कहा :—“नारद जी ! यद्यपि यहाँ पर सर्व प्रकारका सुख है तब भी बैकुण्ठमें आनेकी इच्छा किसीको भी नहीं होती है और हमारा भी मन अकेले नहीं लगता है, दूसरा कोई हो तब दो घड़ी उससे बात चीत ही करें, कोई सेवा करने वाला नहीं है हम क्या करें ? मर्त्य लोक निवासी कोई भी बैकुण्ठमें आनेकी इच्छा नहीं करता है।”

नारदने कहा :—“ये कैसी वार्ता है ? बैकुण्ठका तो नाम सुनकर सब लोग आपसे आप चले आवेंगे।”

भगवानने कहा :—“अच्छा तुम जाकर दो चार आदिमियोंको लावो कुछ सेवाका तो काम चलै, फिर देखा जायगा। नारदजी बड़े उत्साहके साथ चले और आकर एक बूढ़ेसे

नारदने कहा—“बाबा ! बैकुण्ठको चलोगे ?” नारद जी की बात सुनकर वह बूढ़ा बड़ा बिगड़ा और नारद जीसे कहने लगा—“अभागे ! तू ही बैकुण्ठ में जा, जिसका न कोई आगे है न पीछे है मैं क्यों जाऊँ ? मेरे पुत्र और पोते और स्त्री धनादिक सब मौजूद हैं। जो निपूता हो सो बैकुण्ठमें जाय।” नारद जी चुपचाप होकर वहाँ से चल पड़े। आगे एक और युवावस्थावालेसे नारद जीने कहा—“बैकुण्ठको चलोगे ?”

उसने नारदसे कहा,—“बाबा ! बैकुण्ठ तो बूढ़ोंके लिये बना है, जो कि किसी काम लायक न हो वह बैकुण्ठमें जाय, हम तो सब काम कर सकते हैं; हम क्यों बैकुण्ठमें जाय ?” वहाँसे थोड़ी दूर जाकर फिर एक पुरुषसे नारद ने कहा—“बैकुण्ठ को जावोगे ?”

उसने कहा—“किसी लूले लँगड़ेको खोजो, यहाँ पर तुम्हारी दाल नहीं लगेगी।”

नारदजी ने बहुतसे मनुष्योंको बैकुण्ठ जानेके लिये कहा परन्तु किसीने भी कबूल न किया। तब नारदजी ने एक वृद्ध साहूकारको तिलक छाप लगाकर दुकानमें बैठे हुए देखा। नारदजी ने अपने मनमें विचार किया यह भगवान्का भक्त दीखता है, यह अवश्यही बैकुण्ठको चलेगा और यदि यह एक भी चल दे

तब हमारी भी बात रह जाय, क्योंकि हम भगवानसे कह आये हैं कि हम किसीको लायेंगे और भगवान्‌को भी सेवा करनेसे आराम मिल जायगा। नारदजी उस सेठके पास जाकर बैठ गये और सीताराम २ करके उस सेठके कानमें नारद जीने कहा—“सेठजी ! संसारका सुखतो आपने सब देख ही लिया है, अब चलकर कुछ काल बैकुण्ठके सुख को भोगो।”

सेठने कहा :—“महाराज ! मेरीभी यही सलाह है परन्तु अभी लड़का सयाना नहीं है, यह जरा सयाना हो जाय और दूकानके काम काजको सँभाल ले तब चलूँगा, आप कुछ दिन पीछे फिर आना।” नारदजी चले गये और कुछ दिन पीछे फिर उसके पास आये और उससे कहने लगे—“अबतो तुम्हारा लड़का सयाना हो गया है अब चलो।”

उसने कहा :—“अभी इसके सन्तति नहीं हुई है इसके पुत्र होले तब चलूँगा। नारदजी चले आये। फिर कुछ कालके पीछे उस सेठसे जाकर कहने लगे, अब तो चलो अबतो तुम्हारे पोता भी हो गया है।”

सेठने कहा :—“महाराज ! अभी इसकी शादी नहीं हुई है इसके विवाहको देखकर चलूँगा।” नारदजी फिर कुछ कालके पीछे आये और सेठके लिये पूछा कि, सेठ कहाँ है ?

उसके लड़केने कहा :—“वे तो मर गये। नारदजी ने ध्यान लगाकर देखा तो सर्प बनकर अपने द्रव्य पर बैठे थे। नारदजी ने कहा, अब तो चलो।

उसने कहा :—अपने द्रव्यकी रक्षा करता हूँ अभी लड़का द्रव्यकी रक्षा लायक नहीं है जब यह रक्षा लायक हो जायगा तब चलूँगा। नारदजी कुछ दिन पीछे फिर गये तब वह कुत्ता बनकर द्वार पर बैठा था।

नारदजी ने कहा :—“अब तो चलो, तब उसने कहा महाराज पतोहैं अनजान हैं, मैं द्वारपर बैठकर चोर चकारसे उनकी रक्षा करता हूँ, नहीं तो चोर घरमें से माल निकालकर ले जाँय।”

तब नारदजी ने उस सेठकी स्त्रीसे कहा, तुम ही बैकुण्ठ को चलो।

उसने कहा :—“महाराज ! अभी दो चार काम घरके बाकी हैं, वह हो जाँय तब मैं चलूँगी। फिर थोड़े दिनोंके पीछे जब नारदजी गये तब वह सेठानीभी मरकर कुतिया बनकर द्वार पर बैठी हुई और कुत्तोंसे खराब हो रही थी।

नारदजी ने कहा :—“अब तो चलो।”

उसने कहा :—अभी तो मैं इस जन्ममें सुखी हूँ फिर चलूँगी। नारदजी हारकर बैकुण्ठ में जाकर भगवानसे कहने लगे—

“महाराज ! आपने सत्य कहा है, संसारी लोग ऐसी ममतामें फँसे हैं जो कोई भी बैकुण्ठमें आनेकी इच्छाको नहीं करता है।”

यह संसार असार रूपभी है और अति मलीन भी है, तब भी संसारी लोग ऐसी मोह ममतामें फँसे हैं, जो इसके त्यागकी इच्छाको नहीं करते हैं।

राम नामका गौरी

दक्षिण देशके एक नगरमें धनसे मदांध एक बनियाँ रहता था, अपने तुल्य किसीको भी वह बुद्धिमान और धनी नहीं जानता था। दिन रात द्रव्यके ही कमानेके फिकरमें रहता था और कभी भी किसी साधु ब्राह्मणको भोजन नहीं कराता था। दैव योगसे एक दिन एक महात्मा उस रास्तासे आ निकले जहाँ पर उसकी दुकान थी। महात्मा उसकी दुकानके सामने जाकर खड़े हो गये और उस बनियेकी तरफ देखने लगे। वह बनियाँ अपने धनके मदमें ऐसा उन्मत्त था कि उसने आँखको उठाकर भी महात्माकी तरफ न देखा क्योंकि धन मद बड़ा भारी होता है।

जो पुरुष समर्थ है और धनके मद से अन्धा हो रहा है, वह अपने बलको आश्रयण करके राजा की, देवता की तथा गुरु की भी अवज्ञा कर देता है। कहा भी है—प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं।

बनियेकी नादानीको देखकर महात्माको दया आ गई क्योंकि महात्माका दयालु स्वभाव होता ही है। महात्माने मनमें कहा इस कीचसे इसको निकालना चाहिए। ऐसा विचार करके उस साहूकारसे कहा—“राम राम कहो।”

वह साहूकार बोला ही नहीं। जब कि तीन बार कहनेसे भी वह नहीं बोला तब महात्माने सोचा यह भारी मूर्ख है इस तरहरो यह नहीं मानेगा, इसको दण्ड दिया जावेगा तब यह मानेगा। ऐसा विचार करके महात्मा

नदीके तीर पर चले गये। सवेरे वह साहूकार भी नदीके तीर पर स्नान करनेको जाता था।

दूसरे दिन सवेरे जब कि साहूकार नदी पर स्नान करनेको गया तब महात्माने अपने योग बलसे अपनी सूरत उस बनियाँकी तरह बना ली। वह तो अभी स्नान ही उधर करने लगा और महात्मा उसके घरकी तरफ आये, आगे लड़कों ने देखा पिताजी आज जल्दी स्नान करके चले आये हैं, उन्होंने पूछा—आज जल्दी आनेका क्या कारण है? उन्होंने कहा, आज एक ठग हमारी सूरत बनाकर आवेगा हम देख आये हैं वह नदी किनारे पर बैठा बनाता था। तुम लोग हुशियार रहना अभी थोड़ी देरमें वह आवेगा उसको धक्के देकर निकाल देना। यदि कुछ बोले तब दो चार जूता लगाना, लड़कोंसे ऐसा कहकर वह तो भीतर जाकर पलंग पर लेट रहे। उधर सेठजी स्नान करके घरको चले। जब कि समीप घरके पहुँचे तब लड़कोंने ढाँटा क्यों तुम इधर को आते हो!

सेठने कहा—बेटा! मैं अपने घर को आता हूँ तुम हमारे लड़के हो मैं तुम्हारा बाप हूँ। आज क्या तुमको कोई पागलपना तो नहीं हो गया है जो तुम हमको ऐसा कठोर शब्द बोलते हो।

लड़कोंने कहा—हम तुम्हारे लड़के नहीं हैं, जिसके हम लड़के हैं वह तो घरमें बैठे हैं तुम तो कोई बहुरूपिया हो। हमारे बापका स्वांग बनाकर हम लोगोंको बंचन करने

के लिए आये हो। सीधी तरहसे पीछेको लौट जाओ नहीं तो मार खाकर जावोगे।

ज्योंही सेठ आगेको बढ़ा त्योंही दो चार धक्के लगा दिये। तब सेठने गुस्सेमें आकर ज्यों ही लड़कों को गाली दी त्यों ही एक लड़केने दस-पाँच जूते सेठके सिर पर लगा दिये।

अब तो सेठजी भागे और राजाके पास जाकर सब अपना हाल कहा। राजाने सेठके लड़कोंको बुलाकर जब पूछा तब उन्होंने कहा—हमारा बाप तो हमारे घरमें है यह तो कोई बहुरूपिया है। राजाने घर वाले उनके बापको बुलाकर देखा तो दोनोंकी एक तरह झरत दिखाई पड़ी। किसी अङ्गमें भी यत्किंचित फरक नहीं था तब राजा बड़े सोचमें पड़े। अब किसको सच्चा कहा जावे और किसको भूठा कहा जावे।

महात्माने कहा—राजन् ! यदि यह असली सेठ है तब यह इस वार्ताको बतावे बड़े लड़केकी शादीमें कितना रुपया लगा था, और जब मकान बना था तब मकान पर कितना रुपया लगा था।

राजाने सेठसे पूछा तो सेठने कहा—हमको याद नहीं है।

महात्माने योगबलसे सब जबानी बता दिया। जब कि वही खाता देखा गया तब वह ठीक निकला।

राजाने भी सेठको भूठा करके निकाल दिया। अब तो सेठजीका सब धनका मद

उतर गया और नदीके किनारे पर जाकर अपने भाग्यको धिक्कार देकर रोने लगे।

दूसरे दिन महात्मा सबेरे नदी पर जब स्नान करने को गये तब देखा सेठजी रुदन कर रहे हैं और बड़े दुःखी हो रहे हैं तब महात्मा ने अपना असली रूप बना लिया और सेठ के पास जाकर कहा—राम राम कहो, महात्माके वाक्यको सुनकर सेठ काँपने लगा और राम राम करके पुकारने लगा, जब कि सेठ बार बार रामको प्रेमसे कहने लगा तब महात्माने सेठसे कहा—अब तू धक्के और जूते खाकर राम राम कहने लगा यदि पहलेसे ही तू राम नामसे प्रेम रखता तब क्यों जूते खाकर घरसे निकाला जाता ! जिन लड़कों के सुखके लिये तुमने अनर्थोंसे धनको जमा किया था उन्हीं लड़कोंने तेरेको जूते मारकर निकाल दिया है फिर यदि उनसे तू राग करेगा तब आगेसे भी अधिक जूते खायगा, अरे मूर्ख ! तूने अपना जन्म व्यर्थ खो दिया अब तो बैराग्य को प्राप्त हो।

महात्माके चरणों पर सेठ गिर पड़ा तब महात्माने कहा—जो तुम्हारे घरमें सेठ घुसे थे तुमको दण्ड दिलानेके लिये सो हम ही हैं, अब तुम अपने घरमें जाओ और आनन्द से रहो परन्तु उन्माद मत करना, धर्म करना, सत्संग करना, ऐसा उपदेश करके महात्मा तो चले गये और सेठ घरमें आकर उसी दिनसे बैराग्य पूर्वक धर्म करने लगा और महात्माओं की सेवा करने लगा।

(पृष्ठ आठ का शेषांश)

भाँति मिथ्या है। यह समस्त स्वप्नवत जड़ प्रपंच सच्चिदानन्द ब्रह्मके द्वारा संचालित, नियन्त्रित और शक्तिमान है। यह ब्रह्म ही सर्वका अधिष्ठान है। जैसे रूप-रंगसे रहित आकाशमें रूपवती सलोनी नीलमा दीखती है वैसे ही निगुण निराकार ब्रह्ममें यह समस्त साकार सृष्टि भासती है। यह सृष्टिका सभी खेल स्वयं परमात्माने ही रचा है। सभी कठपुतलीकी नाई उसके वशमें हैं। तुलसी दासने कहा है—

उमा दारु जोषित की नाई। सबहि नचावत राम गुसाई ॥

ईश रजाइ सीस सबही के। उत्पत्तिथितिलय विषहु अमीके ॥

मन, इन्द्रियका विषय जो कुछ भी देखा सुना जाता है सब माया और उसका असत्य प्रपंच है। इससे परे निगुण निराकार, एक रस, सत्-चित्-आनन्द धन, एक, परब्रह्म परमात्मा ही सत्य है। यही इस संसार रूपी खेलका रचयिता है। मायाका निरूपण करते हुए मानसकार श्री तुलसी दासजी कहते हैं—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि वश कीन्हैं जीव निकाया ॥

गो गोचर जहँ लग मन जाई। सो सब माया जानहु भाई ॥

इस अनात्मा मायाके परे जो निरंकार ब्रह्म है वही करन-करावन हार है। वह स्वयं निमित्त कारण भी है और उपादान कारण भी है। बिना किसीकी सहायताके वह समस्त सृष्टि का कर्ता है—तुलसीदास कहते हैं—

“जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा ॥”

जैसे मकड़ी बिना किसी अन्य साधन, सहायताके स्वयं ही जाला रूप और उसका कर्ता होकर भी ज्यों की त्यों बनी रहती है उसी प्रकार ब्रह्म भी जगत रूपसे भासते हुए भी ब्रह्मरूपसे पूर्ण, अद्वय, निर्लिप्त, निरंकार और निर्विकारी एक रस बना रहता है। जगत रूप इस समस्त खेलके पूर्व केवल ब्रह्म ही था और नाश होने पर भी ब्रह्म ही शेष बचता है।

शास्त्रकार सब भिन्न दिखाई * अपनी जहँ तक अनुभव पाई।

मन रावण की उत्पत्ति निज कही * सबका पिता पितामह ब्रह्म सही ॥

उस सर्वाधिष्ठान, सर्वव्यापक, अद्वय, अविनाशी, निरंकार, सर्व प्रपंचका रचयिता ब्रह्मको सभी शास्त्रकार अपने अपने अनुभवके अनुसार भिन्न-भिन्न ढंगसे दर्शाते हैं अर्थात् उस अकथनीय परमात्म तत्त्वका वर्णन अपनी बुद्धिके अनुसार करते हैं। और स्वस्वरूप ब्रह्मसे ही मन रावणकी उत्पत्ति कहते हैं क्योंकि तीनों कालमें विद्यमान रहनेवाला एक ब्रह्म ही सत्य है, वही सबका पिता और पितामह है।

बाबाजीके इस वाणीका एक भाव यह भी है कि द्वैत भावके कारण अनेक शास्त्रकार ईश्वर जीवका भेद, जीवोंका परस्पर भेद, जीव जड़का भेद, ईश जड़का भेद और जड़जड़का भेद

अनेक प्रकारसे बतलाते हैं। एक दूसरेको एक दूसरेसे भिन्न दर्शाते हैं। बाबाजी कहते हैं—अपने अनुभवमें जैसा आया है उसीके अनुसार मनरूपी रावणकी उत्पत्ति कही है। क्योंकि अच्छी बुरी प्रत्येक वस्तुका आदि स्रोत केवल परमात्मा ही है। यह समस्त जगत परमात्माका ही विवर्त है। सभी जेवरोंकी उत्पत्ति सोनेसे ही हुई है, नाम रूपमें भेद होनेसे सोनेमें भेद नहीं होता। नाम रूप बनते बिगड़ते रहते हैं परन्तु सोना ज्योंका त्यों रहता है। उसी प्रकार ब्रह्मसे ही यह भिन्न भिन्न नाम रूप वाला जगत बना है इसलिये ब्रह्म ही सबका पिता और पितामह है। नाम रूपात्मक जगतके नाश होने पर ब्रह्मही शेष रह जाता है इसलिये यह ब्रह्म ही 'सही' है अर्थात् सत्य है।

एक भाव यह भी हो सकता है कि "ब्रह्म सही" अर्थात् "ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या" ब्रह्मही तीनों कालमें एक रस रहने वाला सत्य है शेष जगत स्वप्नवत् भूठा है। क्योंकि कहा भी है—

“सत् हरिनाम जगत सब सपना”

यह सत्य ब्रह्म ही “निज” है ? अर्थात् यही अपना स्वस्वरूप है। इसीसे पंचतत्त्वरूपी विश्वश्रवा तथा मनरूपी रावण आदि समस्त जगतकी उत्पत्ति हुई है। इसलिए ब्रह्म सबका पिता पितामह है। इसी एक परम तत्त्वको अपने दृष्टिकोण, पुरुषार्थ और अनुभवके अनुसार शास्त्रकार भिन्न-भिन्न रूपसे दिखलाते हैं। इसीलिये अनुभवमें न्यूनाधिक्य, स्थान भेद, पात्र भेद, दृष्टि भेद, उपाधि भेद, स्थिति भेदके कारण दर्शनोंमें तत्त्वतः अभेद होते हुए भी बाहरसे भिन्नता दिखाई पड़ती है।

बाबाजी यहाँ यह भी कहते हुए प्रतीत हो रहे हैं कि उस अगम, अनादि, अनन्त परमानन्दमय तत्त्वका जहाँ तक मैंने अनुभव किया है उसके अनुसार अपने ढंगसे मन रावणकी उत्पत्ति कही है। मेरे कहनेमें और शास्त्रोंके कथनमें स्थूल दृष्टिसे असंगति तथा भिन्नता सम्भव है। फिरभी अपना अनुभव स्वतन्त्र रूपसे कहा जा सकता है। क्योंकि उरग्रेरक सर्वका पिता पितामह सत्य ब्रह्म ही है।

ब्रह्म आदि कारण सबका भाई * जिससे सबका पिता कहाई।

इन विधि उत्पत्ति ब्रह्मसे कही * मन रावणका विस्तार आगे सही॥

एक ब्रह्मही सबका पिता है, इस पर और अधिक बल देते हुए बाबाजी कहते हैं कि ब्रह्म सबका आदि कारण है इसीलिये सबका पिता कहलाता है। “इन विधि”में ‘इन’का भाव है मन रावण सहित सकल प्रपंच और ‘विधि’ का अर्थ है परमात्माकी आज्ञासे सृष्टिकी रचना करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि। ये सब ब्रह्मसे ही उत्पन्न हुए हैं। क्योंकि यह ब्रह्मही माया विशिष्ट होने पर सर्वज्ञ ईश्वर कहलाता है। और यही अविद्या विशिष्ट होने पर अल्पज्ञ जीव कहलाता है। इस प्रकार सबकी उत्पत्ति ब्रह्मसे ही कही है। अब आगे मन रावणका वर्णन विस्तारसे करेंगे।

आत्मज्ञानका अग्रदूत 'परमानन्द सन्देश'

श्री ठाकुरदत्त त्रिपाठी

शब्द रूप रस गन्ध आदि पाँच विषयोंके क्षणिक आनन्दाभासमें ही प्रत्येक जीव अनादि कालसे भूला हुआ है। उसे लेशमात्र भी यह ज्ञान नहीं है कि इसके अतिरिक्त भी कुछ आनन्द होता है। यही कारण है कि किसी भी प्राणीको वास्तविक सुख और शान्ति नहीं मिल पाती। मिले भी कैसे? एक लोकोक्ति है ओठके चाटनेसे प्यास नहीं बुझ सकती। प्यासा व्यक्ति किसी जलाशयके निकट जाने पर ही जल प्राप्त कर सकता है यह ध्रुव सत्य है। भौतिक संकट निवारणके हेतु कुछ ऊपर उठनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। रात दिन विषय सुख ही भोगते रहनेसे ही कुछ लाभ नहीं होगा। कहनेका आशय यह है कि कुछ अपनी आत्मा का भी बोध करना पड़ेगा। यह जानना पड़ेगा कि मैं कौन हूँ? परमात्मा कौन है? संसार क्या है? मेरा और परमात्माका क्या सम्बन्ध है? इसके लिये सत्संग करना, अच्छे शास्त्रोंका अध्ययन करना तथा किसी संत महात्मा सद्गुरु का पुनीत उपदेश सुनना भी अपेक्षित है। इसके बाद ही यह जानना सरल हो जायगा कि जीव शुद्ध स्वरूप आत्मा अथवा ब्रह्म ही है। जगतका दर्शन अज्ञान एवम् मायाके कारण ही हो रहा है। आत्म-बोध होने पर यह विश्व उसी प्रकार अदृश्य हो जाता है जैसे निद्राके भंग हो जाने पर स्वप्नका विलोप हो जाता है। इसलिये यह नितान्त आवश्यक है कि जगतकी भूठी आभाका परित्याग करके केवल आत्म चिन्तनमें ही समय लगाया जाय। बिना परमात्माको जाने हुए जीवका किसी कालमें भी

उद्धार नहीं हो सकता। चाहे कितने ही दूसरे प्रयत्न क्यों न किये जायें। इसी बातको श्री रामचरित मानस भी पुष्ट करता है।—

“आतम अनुभव सो सुप्रकासा। तब अम मूल अविद्या नासा ॥ उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना ॥ वारि मथे वरु होय घृत, सिकता ते वरु तेल। विनु हरि भजन न भव हरिय, यह सिद्धान्त अपेल। जगदात्मा प्रान पति रामू—तासु विमुख किमि लह विश्रामू।

परमार्थका अमर सन्देश घर-घर पहुँचानेके हेतु कुछ उदार सन्त महात्माओं, विचारकों और दानशील धी मानों कि कृपासे आजकल अनेक धार्मिक पत्रिकाएँ निकल रही हैं। अपनी आर्थिक क्षति उठाकर भी ये पत्रिकाएँ अपार लगनके साथ अगणित जिज्ञासुओंका परम कल्याण कर रही हैं। इन्हीं पत्रिकाओंमें परमानन्द संदेश भी अत्यन्त उपयोगी पत्र है। परम पुनीत नगरी काशीमें सन्त शिरोमणि सद्गुरु बाबा शारदा राम उदासीन मुनिजीकी प्रेरणा और आशीर्वाद द्वारा शारदा प्रतिष्ठानसे यह पत्र प्रकाशित होता है। श्री परम सेठ अजित मेहता इस पत्रिकाके संचालक हैं और वे ही महानुभाव अपने उदार दानसे इसकी क्षति की भी पूर्ति करते रहते हैं। ईश्वर ऐसे महान् उपकारीको सदा दीर्घायु करे।

साधारण पत्र पत्रिकाओंको लोग बड़ी लगनके साथ पढ़ते हैं। आध्यात्मिक विषयकी पत्रिकाओंमें भी ऐसे ही मन लगाना परमावश्यक है क्योंकि उनसे अत्यधिक कल्याण होनेकी संभावना रहती है। प्रत्येक विवेकशील प्राणी ऐसी पत्रिकाएँ पढ़कर वास्तविक स्वरूपका

परिज्ञान प्राप्त करनेमें निश्चित रूपसे सफल हो सकता है। इसलिये परमानन्द संदेश आधुनिक समाजमें नूतन आत्म चेतना का स्फुरण कर सकेगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। किसी पत्र पत्रिकाको चलानेके लिये योग्य तथा अनुभवी सम्पादककी भी अपेक्षा रहती है। बहुत सी पत्र पत्रिकाएँ अल्प काल तक चलनेके पश्चात् शीघ्र ही समाप्त हो जाती हैं। इसका प्रधान कारण यह होता है कि उन पत्र-पत्रिकाओंको सुयोग्य लेखक और सम्पादक मिलते ही नहीं। यदि मिलते भी हैं तो उनका साहस अधिक दिनों तक टिक ही नहीं पाता। सोये हुये अज्ञानी जीवको जगानेके लिये 'परमानन्द सन्देश' सदाचार, राष्ट्रीयता, सन्त उपदेश तथा जन्म मरणके चक्करसे छुड़ा देने वाले वेदान्त सिद्धान्तका प्रचार कर रहा है। यदि आप भी अपना परम कल्याण चाहते हैं तो आज ही इस पावन पत्रिकाका ग्राहक बन जाइये और परम पुनीत एवम् ऊँची आत्म भावनामें लीन होकर अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थित हो जाइये। अब मैं इस सम्बन्धमें अधिक न लिखकर परमानन्द सन्देशके प्रधान सम्पादक जी का थोड़ा परिचय देकर अपनी लेखनी पवित्र करना चाहूँगा। क्योंकि सज्जन पुरुषोंका गुणगान करनेसे भी बहुत बड़ा आत्म कल्याण होता है।

आचार्य भद्रसेन वैद्य

आप ज्योतिष शास्त्रके मर्मज्ञ तथा आयुर्वेद

के कुशल चिकित्सक हैं। यदि चाहते तो पर्याप्त वैभवका उपार्जन कर सकते थे किन्तु "रमा विलास राम अनुरागी। तजत वमन इव नर बड़ भागी।" भगवान्‌में जिसका चित्त अनुरक्त हो जाता है वह धनको तुच्छ समझकर ठुकरा देता है। वैद्य जीने भी ऐसा ही किया है। आपने स्वस्थ और दिव्य शरीर प्राप्त करके भी अपना घर नहीं बसाया। अपने आपको सद्गुरु बाबा शारदाराम जीके पूज्य चरणोंमें सौंपकर त्याग मय जीवन बिता रहे हैं। बड़े ही नम्र तथा मिलनसार व्यक्ति हैं। आदरणीय श्री बाबा जी का शुभादेश पालन कर परमानन्द सन्देशका सम्पादन तथा संचालन करके जनता जनार्दनकी सेवा कर रहे हैं। प्रकृतिने आपको बड़ा ही उदार हृदय प्रदान किया है। लौकिक सुखोंका परित्याग करके अपने आत्म चिन्तनके रसामृत का ही सर्वदा पान करते रहते हैं। प्रत्येक विचारशील प्राणी आदरणीय आचार्य जीसे प्रेरणा प्राप्त करके अपना जीवन सफल बना सकता है। इसमें लेश मात्र भी शंका नहीं करनी चाहिये। "संशयात्माविनश्यति" ऐसा भगवान्‌ श्रीकृष्णने भी जीवको कृपा पूर्वक श्रीमद्भागवत गीतामें चेतावनी देते हुये कहा है।

परमानन्द सन्देशकी लोक प्रियताके लिये मेरी अपार शुभ कामना है। मुझे पूर्ण रूपसे आशा है कि यह उपयोगी और पावन पत्र मेरे जैसे अमित जीवोंका अवश्य मार्ग दर्शन करानेमें सफल होगा।

स्थायी सदस्य

श्रीमती शान्ता देवी हेड आपरेटर सिरसा, हिसार पंजाबने परमानन्द सन्देशका स्थायी सदस्य बनकर सहयोग किया है। हम उनका धन्यवाद करते हुये आभार प्रदर्शित करते हैं। --सम्पादक

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫
[১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫]

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫
১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫
১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

১৯৩৩ খ্রিঃ ১৫

प्रकाशित हो गया

जिसकी बहुत समय से प्रतिज्ञा थी

ब्रह्मविद्या का दुर्लभ ग्रन्थ

उपनिषदों का सार

आत्म पुराण

परमानन्द संदेश के विशेषांक के रूप में गीतसार-

एकोत्तरी और ब्रह्मज्ञानामृत के साथ

लगभग ४०० पृष्ठों का विशेषांक

परमानन्द संदेश का सदस्य बनकर

निःशुल्क प्राप्त करें

सदस्यों के लिए वार्षिक चन्दा ५) पांच रुपये मात्र

रजिस्टरी डाक खर्च के लिये ५० न० पै०

आज ही ५-५० न० पै० मनोआर्डर द्वारा भेज कर लाभ उठावें।

थोड़ी ही प्रतियां शेष बची हैं।

कार्यालय का पता:—

शारदा प्रतिष्ठान सी. के. १५/५१, सुड़िया

बुलान'ला, वाराणसी।